पॉपुलर एजुकेशन सिरीज़–3

उड़ीसा के जनसंघर्ष

सबक और चुनौतियां

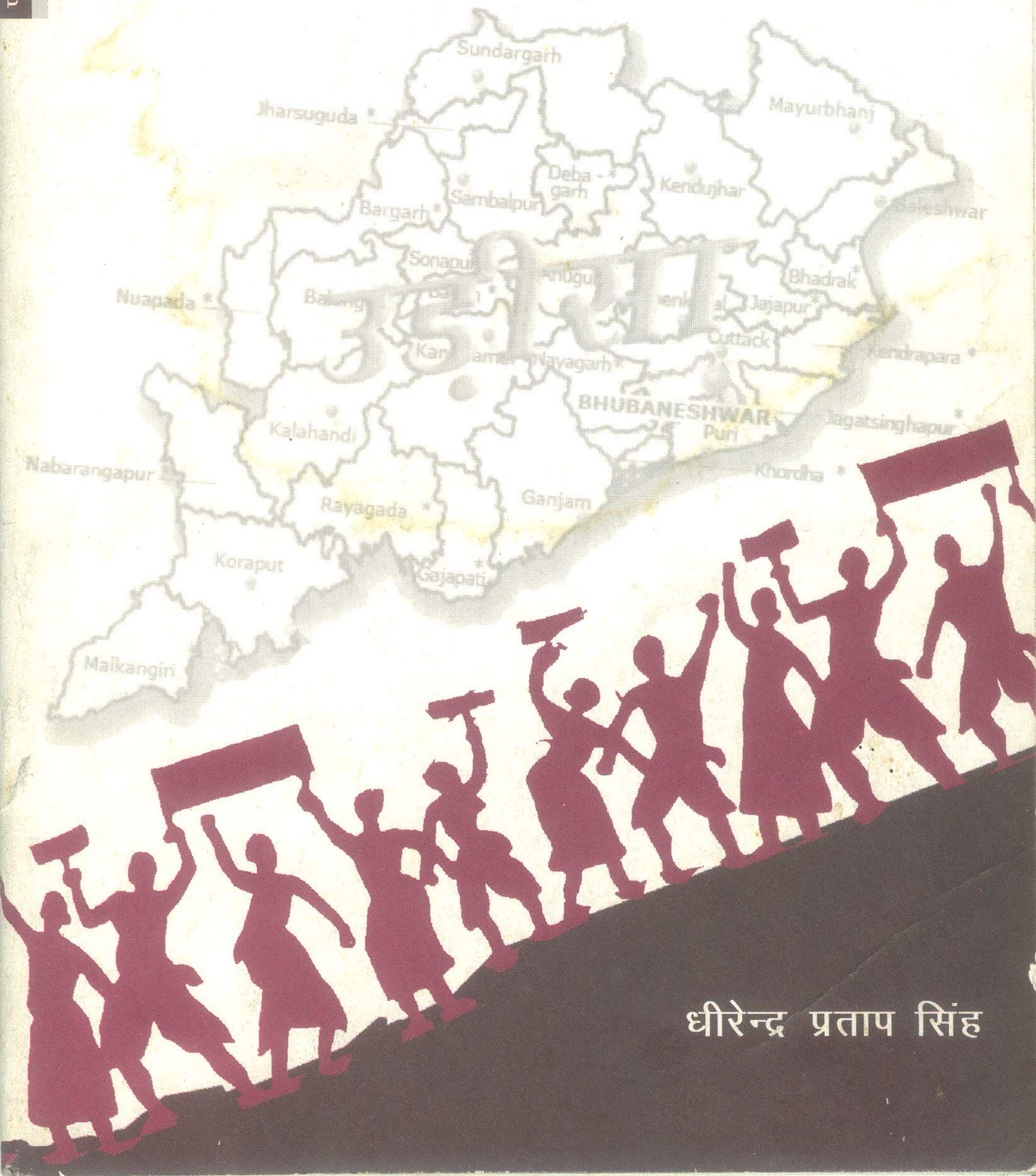

धीरेन्द्र प्रताप सिंह

उड़ीसा के जनसंघर्ष

सबक और चुनौतियां

धीरेन्द्र प्रताप सिंह

सीमित वितरण हेतु

जनहित में

पॉपुलर एजूकेशन एण्ड एक्शन सेंटर (पीस)
एफ–93, कटवारिया सराय, नई दिल्ली–16

द्वारा प्रकाशित

फरवरी, 2009

उड़ीसा के जन संघर्ष

ज़रूरत साझी मुहिम की, परंतु डगर अलग अलग !

- स्थापित एन. जी. ओ. एवं राजनीतिक दल सरकार एवं कंपनियों के साथ।
- एन. जी. ओ. 'पीपुल्स एजेण्डा' से 'इस्टेब्लिशमेंट एजेण्डा' की ओर।
- दाता संस्थाओं की गुमराह करने की भूमिका तथा स्थानीय एन. जी. ओ. की मदद से जन संघर्षों को विभाजित करने, तोड़ने की कोशिश और अपने एजेण्डे का प्रत्यारोपण।

वर्ष 1969 में पूरे उड़ीसा राज्य में आम हड़ताल करके उड़ीसा में गरीबी कम करने के लिए एक और 'स्टील प्लांट' लगाने की सरकार से मांग की गयी थी। परंतु आज उड़ीसा में देशी–विदेशी कंपनियों द्वारा प्रस्तावित कारखानों, माइनिंग का व्यापक पैमाने पर विरोध किया जा रहा है। इस विरोध में सीधे तौर पर प्रभावित लोगों की महत्वपूर्ण भूमिका है और उनके सहयोग, समर्थन में भी तमाम लोग खड़े हुए हैं। 40 साल पहले जब एक और स्टील प्लांट की मांग की जा रही थी तब लोगों को यह लग रहा था कि इससे रोज़गार के अवसर मिलेंगे, प्लांट में हज़ारों लोगों को काम सीधे तौर पर मिलेगा, शिक्षा–स्वास्थ्य की सुविधाओं का प्रसार होगा और श्रमिकों के कल्याण हेतु तमाम कदम उठाये जायेंगे। परंतु आज उन्हें लग रहा है कि उन्हें उजाड़ दिया जायेगा, जो कुछ है भी, वह भी छिन जायेगा। पहाड़, वन, ज़मीन, पानी, घर–आवास, गांव बस्ती उनसे छिन जायेगी– उन्हें अपना पूरा जीवन अंधकारमय दिख रहा है अतएव वे विरोध करने को तथा लड़ते हुए मर जाने को तत्पर दिख रहे हैं।

एक दौर था जब सामंत–राजा–रजवाड़े औद्योगीकरण का विरोध कर रहे थे, इससे उन्हें अपने वर्चस्व के कमज़ोर होने का भय सता रहा था। आज़ादी से पूर्व 'ओरिएण्ट पेपर मिल' केसिंगा में लगाने

की इजाज़त कालाहाण्डी के राजा ने अपने राज्य में नहीं दी थी। अतएव यह मिल संबलपुर में लगायी गयी क्योंकि यह इलाका सीधे तौर पर अंग्रेज़ों द्वारा शासित था – वहां किसी राजा का अस्तित्व नहीं था। इसी प्रकार मयूरभंज के राजा की अनुमति न मिलने पर टाटा कंपनी बारीपदा के बजाय टाटा नगर में लगायी गयी।

आज स्थितियां उलट गयी हैं। आम जनता कंपनियों का विरोध कर रही है और पुराने राजा–रजवाड़े कंपनियों का स्वागत कर रहे हैं। कालाहाण्डी राज परिवार के एक सदस्य जो सांसद हैं लांजीगढ़ में वेदांत कंपनी का समर्थन ही नहीं कर रहे हैं बल्कि इस तरह की अन्य कंपनियों की ज़रूरत रेखांकित कर रहे हैं।

इस आये बदलाव को सहजता से समझा जा सकता है। उदारीकरण–निजीकरण की वैश्विक प्रक्रिया के सक्रिय सहभागी बनने के बाद आज हमारी सरकार अपने ही नागरिकों के हित के खिलाफ बेशर्मी के साथ खड़ी है। उसकी कल्याणकारी भूमिका बदलकर वैश्विक पूंजी की निर्लज्ज चाकरी हो गयी है। राजा–रजवाड़े सत्ता तथा पूंजी के सहभागी तथा सहभोगी की भूमिका में हैं। विकास के तथाकथित माडल को आम लोगों ने अपने जीवन के अनुभवों से समझने की प्रक्रिया शुरू कर दी है। उसी का परिणाम है कि आज उड़ीसा में सबसे ज़्यादा दलित वंचित समाज नेहरू के 'आधुनिक मंदिरों' के नवीनतम चेहरों की आज की असलियत तथा इसमें बैठे महाप्रभुओं की मंशा समझते हुए कंपनियों/माइनिंग को नकार रहा है।

विकास एवं विनाश की उलझन में फँसे इस समाज को दिशा देने के लिए समाचार पत्र, बुद्धिजीवी, राजनीतिक दल तथा स्वंयसेवी संगठन, पर्यावरणविद तथा दाता संस्थायें हरकत में हैं। इन सबके अपने एजेण्डे तथा तात्कालिक एवं व्यापक उददेश्य हैं। सर्वभोगियों की जमात में सहभोगी बनने को आतुर ताकतें भी इस प्रक्रिया में सक्रिय रहकर भुक्तभोगियों का मार्गदर्शन अपने अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति हेतु कर रही हैं। वहीं दूसरी ओर आशा की किरण के रूप में

कुछ ऐसी ताकतें और लोग भी हैं जो पूंजी केंद्रित – माल मुनाफा केंद्रित विकास की प्रक्रियाओं को चुनौती दे रहे हैं और भुक्तभोगी समाज को सर्वभोगियों के खिलाफ लामबंद करते हुए सहभोगियों की भितरघात से भी अवगत करा रहे हैं।

यह जटिल स्थिति आज उड़ीसा में चल रहे जन संघर्षों के लिए एक गंभीर चुनौती है। जब सरकार आंदोलनों के प्रति निर्मम हो, कंपनियां अपनी अपनी गुण्डावाहिनी बना चुकी हों, न्यायालय माइनिंग के पक्ष में निर्देश दे रहे हों, कंपनियां अपनी अपनी स्वंयसेवी संस्थायें, ट्रस्ट, फाउण्डेशन बनाकर लोगों को प्रलोभन दे रही हों – गुमराह कर रही हों, समाचार पत्र जनता के हितों के साथ न हों – तो ऐसी हालात में जन संघर्षों को और सचेत, मुस्तैद तथा एकजुट रहना होगा। इस तरह के प्रयास किये जा रहे हैं परंतु बहुत नियोजित एवं ढंग से नहीं हो पा रहे हैं।

फलतः कंपनियों एवं माइनिंग का विरोध पूरे उड़ीसा में एक जैसा नहीं दिखता। उड़ीसा के पश्चिमी एवं केंद्रीय भाग में कंपनियों का विरोध – प्रतिरोध उतना तीखा नहीं है जितना राज्य के तटीय तथा दक्षिणी हिस्से में है। वास्तव में तटीय भाग में ज़मीन बहुत उपजाऊ है यहां कृषि के सहारे लोग अपनी ज़िंदगी सामान्य तौर पर बिता लेते हैं अतएव वे किसी भी हालत में अपनी ज़मीन से बेदखल होने को तैयार नहीं होते। उन्हें इसका कोई स्पष्ट तथा बेहतर विकल्प भी नहीं दिखता है। दक्षिण उड़ीसा के समृद्ध वन एवं पहाड़ व्यापक आबादी को जीविका का आधार देते हैं। उदाहरण के तौर पर हम देख सकते हैं कि सेज के स्तर के पोस्को कंपनी के प्रस्तावित बंदरगाह के विरोध में संघर्षरत लोगों ने जटाधारी मुहाने का अवरोध हटाने का कार्य स्वंय मिलकर सामूहिक रूप से इसलिए किया कि जल जमाव के कारण उनका पूरा क्षेत्र जो धान, पान, मीन तथा केवड़ाफूल के उत्पादन का बेहतरीन इलाका है – बचाया जा सके तथा फसलों की बर्बादी को रोका जा सके। यह सामूहिक पहल पोस्को प्रतिरोध संग्राम समिति की पहल पर इसलिए हो पाई क्योंकि यह जल जमाव की समस्या उनकी आय एवं जीविका को सीधे तौर

पर प्रभावित कर रही है। उड़ीसा के तटीय भागों में बेहतरी की संभावना किसान देख रहे हैं अतएव वे अपनी ज़मीन छोड़ने को तैयार नहीं हैं वहीं दक्षिणी उड़ीसा जहां भूख सबसे बड़ा सवाल है वे अपनी जीविका के आधार जंगल – पहाड़ छोड़ने को तैयार नहीं है। अतएव इन क्षेत्रों में प्रतिरोध – विरोध तीव्र है। मामला जंगल और पहाड़ों पर बसे लोगों के अस्तित्व का है। लोगों के अस्तित्व एवं कंपनियों के मुनाफे के बीच सीधा द्वंदात्मक संघर्ष है। इसमें कोई भी मध्यम मार्ग, सरोकार अंततः अस्तित्व के लिए लड़ रहे लोगों के विरूद्ध ही होगा।

मुख्य राजनीतिक दल, दाता संस्थायें, स्वंय सेवी संगठन अपने प्रचार अभियानों, कार्यशालाओं, सम्मेलनों, बयानों, साक्षात्कारों आदि के जरिये प्रभावित एवं आंदोलनकारी जनों को या तो मध्यम मार्ग की ओर ले जाने को तत्पर हैं (जो बेहतर मुआवजे, क्षेत्र के विकास तथा पर्यावरण कानूनों के सख्ती से लागू करने और बेहतर पुनर्वास की तरफ पहल करने को प्रेरित करते हैं) या प्रभावित होने जा रहे लोगों को उनकी गरीबी, पिछड़ेपन, मलेरिया, मच्छर, भुखमरी, अशिक्षा, सूखा, महामारी की याद दिलाकर शहर की चकाचौंध की बात करके उन्हें अपना गांव, घर, बस्ती छोड़ देने को सहमत करते दिखते हैं। साथ ही यह कहकर कि 'कंपनी तो लगेगी ही' 'माइनिंग तो होगी ही' लोगों के अंदर निराशा पैदा करके उनके संघर्ष करने के तेवर को धूमिल करते हैं। उनका यह मनोवैज्ञानिक प्रचार अभियान, लालच देने के कारनामे तथा आमजनों की चेतना को कुंद करने की साजिश उड़ीसा के जन संघर्षों के लिए एक गंभीर चुनौती है।

कंपनियों की स्थिति यह है कि उन्होंने आदिवासियों–गरीबोंको हलाने–फुसलाने–लालच देने के सारे तरीके अपना रखे हैं। दलालों की एक टीम बना रखी है। पत्रकारों, बुद्धिजीवियों, शिक्षकों, प्रधानाचार्यों के एक बड़े हिस्से को अपने खेमे में शामिल कर रखा है। अपनी गुण्डावाहिनी बना रखी है। सरकार, अफसर पुलिस तो उनकी अपनी है ही। कलिंगनगर तथा लांजीगढ़ में उन्होंने मकान

(कालोनियाँ) बनवाकर उसमें आदिवासियों को रहने के लिए आमंत्रित कर रखा है। 6 महीने का राशन, बिजली भी देने की घोषणा कर रखी है। हेल्थ कैम्प, मेगा आई कैम्प तथा क्रिकेट टूर्नामेंट का भी आयोजन करते रहते हैं। लांजीगढ़ के आस–पास के आदिवासियों के गांवों में इन्होंने आँगनबाड़ी केन्द्र भी खोल रखे हैं। इन्होंने अपनी गुण्डावाहिनी में झारखण्ड, बिहार एवं यू.पी. के बेरोज़गारों को भरती कर रखा है तथा इसमें स्थानीय अपराधी भी शामिल हैं। कंपनी ने गैर सरकारी संगठनों को क्षेत्र में सेवा के कार्य करने हेतु धन उपलब्ध कराया है। प्रधानाचार्यों ने कालेजों में छात्रों की मीटिंग तक पर रोक लगा रखी है। भवानी पटना में सरकारी आई टी आई का प्रिंसिपल वेदांत कंपनी के आई टी आई का भी काम देख रहा है।

समाचार पत्रों की स्थिति यह है कि भुवनेश्वर के एक स्थानीय समाचार पत्र 'धारित्री' एवं देश के प्रमुख अखबार 'द हिन्दु' के अलावा सभी समाचार पत्र कंपनी के साथ हैं। अभी पोस्को कंपनी ने कोरिया के सिओल शहर में प्रेस वार्ता आयोजित की और भुवनेश्वर के तमाम पत्रकारों को हवाई जहाज़ से सिओल ले जाया गया। उड़ीसा के एक प्रमुख समाचार पत्र 'समाज' के कार्यालय में पोस्को के अधिकारी संपर्क बढ़ाने के लिए जा चुके हैं।

वास्तव में मुख्य धारा की पूँजीवादी–साम्राज्यवाद परस्त मीडिया सामाजिक सरोकारों को नष्ट–भ्रष्ट कर देने के लक्ष्य के साथ व्यक्तिवाद और उपभोक्तावाद के अंधाधुंध प्रचार में बड़ी मुस्तैदी, प्रतिबद्धता, कर्तव्यनिष्ठा, कौशल तथा परिश्रम के साथ लगा हुआ है। यह अपने प्रिंट–इलेक्ट्रानिक रूपों के द्वारा जन सामान्य के सौंदर्यबोध, संघर्ष चेतना तथा यथार्थबोध को कुंद करने में सोल्लास निमग्न है। उसके द्वारा उदारीकरण, भूमण्डलीकरण, निजीकरण तथा बाजारीकरण के पक्ष में आम सहमति बनाने और जनमत निर्माण करने की कोशिश निरंतर जारी है। आमजनों, हाशिये पर ढकेल दिये गये लोगों के दुःख दर्द, पीड़ा और असंतोष के लिए वहाँ कोई जगह नहीं है। इसका अपवाद कुछ छोटे–छोटे स्थानीय अखबार, पत्रिकायें ही हैं जो जन सरोकार के प्रति समर्पित हैं।

ऐसा लगता है कि राष्ट्र राज्य आज निजीकृत के बाद 'कारपोरेटीकृत' हो गया है और अपने ही नागरिकों के हितों के खिलाफ आचरण करते हुए उसकी सरकार जन संघर्षों के विरोध में सभी तरह के दमन के हथकण्डों का इस्तेमाल तो कर ही रही है, अपने ही कानूनों तथा संवैधानिक प्रतिबद्धताओं का कत्ल कर रही है। इतना ही नहीं संघर्षरत गांवों में सार्वजनिक वितरण प्रणाली, बिजली आपूर्ति को भी लगभग बन्द कर दिया गया है। इन गांवों पर सामूहिक आर्थिक दण्ड की योजना पर भी सरकार विचार कर रही है। स्कूलों को मनचाहे ढंग से पुलिस छावनी में बदल दिया जाता है तथा महीनों स्कूल बंद रखे जाते हैं। सरकार की सारी कल्याणकारी योजनायें इन 'विद्रोही' गांवों में बंद कर दी गयी हैं। ऐसा लगता है कि विरोध–प्रतिरोध के संवैधानिक लोकतांत्रिक अधिकारों का इस्तेमाल करने वालों को नागरिकता के मौलिक अधिकारों से भी वंचित करने की सरकारी पहल अपनी बुलंदियों पर है।

उड़ीसा के जन संघर्ष एवं मुख्य राजनीतिक दलों की भूमिका

उड़ीसा में चल रहे जन संघर्षों के संदर्भ में कांग्रेस, भाजपा एवं बी जे डी की भूमिका एक जैसी है। देश की आर्थिक नीति, औद्योगिक नीति, कृषि नीति एवं भू बाज़ारीकरण के संदर्भ में इनकी मतैक्यता उड़ीसा में भी साफतौर पर दिखायी देती है। ये दल तथा इनके नेता कंपनियों तथा माइनिंग के समर्थक हैं। इन्होंने कई बार सभायें करके विकास के वास्ते कंपनियों तथा इनके कारोबार का समर्थन करने का अनुरोध आम लोगों से किया है तथा इन योजनाओं का विरोध करने वालों को विकास विरोधी बताया है। इनका यह भी तर्क है कि जो लोग आदिवासियों को अपना गांव–घर–जंगल–ज़मीन न छोड़ने के लिए उकसा रहे हैं वे वास्तव में आदिवासियों को उसी हालत में बनाये रखना चाहते हैं जिन हालात में वे शताब्दियों से हैं। ये दल तथा इनकी अगुआई में चल रही सरकारें जल्दी से जल्दी ज़्यादा से ज़्यादा 'मेमोरण्डम आफ अण्डरस्टैण्डिंग' देशी विदेशी कंपनियों के साथ करके उसे अविलंब लागू कराने को आतुर हैं। इसके लिए वे आंदोलनकारियों के साथ किसी भी स्तर पर बल प्रयोग करके निपटने के किसी भी तरीके के हामी हैं। इनके नेतृत्व में चलने वाली सरकारों ने 'विकास विरोधियों' को सबक सिखाने के लिए न केवल पुलिस एवं अन्य सशस्त्र बलों का इस्तेमाल किया हैं, काले कानूनों एवं फर्जी मुकदमों का सहारा लिया है बल्कि कंपनियों को अपनी गुण्डावाहिनी बनाने की छूट दे रखी है। केन्द्र और राज्य सरकार को किसी भी प्रकार का विरोध प्रतिरोध स्वीकार्य नहीं है।

कई स्थानों पर इन राजनीतिक दलों के कुछ स्थानीय नेता तथा कार्यकर्ता आंदोलनकारियों के साथ ईमानदारी से कार्य कर रहे हैं। परंतु उनकी यह भूमिका व्यक्तिगत स्तर पर है – दल के स्तर पर नहीं। उड़ीसा के जन संघर्षों से जुड़े साथियों का कहना है कि इन दलों की अंदरूनी गुटबाज़ी तथा भ्रष्ट आचरण के कारण इन दलों

के नेताओं के जिस गुट को कंपनियां उपकृत्य नहीं करतीं वे उपकृत्य होने तक आंदोलनकारी बन जाते हैं। साथियों का यहां तक कहना है कि लांजीगढ़ में वेदांत कंपनी के माल लाने ले जाने की सुविधा को ध्यान में रखकर एक पूर्व केद्रीय मंत्री भक्त चरण दास ने बतौर मंत्री लांजीगढ़ से जूनागढ़ तक की रेल लाइन पास करायी और आज 'ग्रीन कालाहाण्डी' नामक अभियान चलाकर वेदांत कंपनी का विरोध कर रहें है।

ऐसा लगता है कि कांग्रेस पार्टी के नेता होते हुए भी जब श्री भक्त चरण दास को यह प्रतीत हुआ कि स्थानीय लोग वेदांत कंपनी के विरोध अर्थात् नियामगिरि की सुरक्षा के लिए पूर्णतया कृत संकल्प हैं तो वे भी कंपनी का विरोध करने को बाध्य हुए हैं। यह जन आंदोलन का एक बहुत ही सकारात्मक पक्ष है कि आंदोलन के दबाव में किस प्रकार एक राजनेता को अपना पक्ष बदलना पड़ा।

भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री और मौजूदा समय में कांग्रेस पार्टी के नेता श्री भक्त चरण दास जो गया (बिहार) के भूमि आंदोलन में संघर्षवाहिनी के एक कार्यकर्ता के रूप में एक लंबे समय तक सक्रिय रहे हैं, ने अपने बारे में की गयी इस टिप्पणी से असहमति व्यक्त करते हुए कहा कि "एक राजनीतिक पार्टी में सक्रिय होने के नाते मैं नियामगिरि आंदोलन में लगातार समय नहीं दे पाता हूँ परंतु मेरे वहां जाने पर ही सक्रियता आती है। ग्रीन कालाहाण्डी में किसी एन.जी.ओ. की कोई दखलंदाजी नहीं है, हमारे साथी बिकाऊ नहीं हैं, कंपनी द्वारा दिये गये चावल को भी आदिवासियों ने मेरे आहवान पर वापस कर दिया। कंपनी को समर्थन नहीं मिल रहा है। ग्रीन कालाहाण्डी की ही वजह से आज तक नियामगिरि में माइनिंग शुरू नहीं हो पायी– मेरी आलोचना करने वाले लोग देशद्रोही हैं तथा बिकाऊ लोग हैं, इनका कोई जनाधार नहीं है। उनका कहना था कि मेधा पाटकर वहां गयीं उन्होंने कंपनी–माइनिंग का विरोध करने के बजाय पुनर्वास की बात रखी। ग्रीन कालाहाण्डी द्वारा चलाया जा रहा आंदोलन समझौताविहीन तथा जीवंत है।" श्री दास का कहना था कि "एन.जी.ओ. पैसा कमा रहे हैं। मेरे ऊपर मित्रों (अफसरों तथा

राजनीतिज्ञों) द्वारा कंपनी ने आंदोलन से अलग होने का दबाव बनाया, करोड़ों रूपये आफर किये गए, पार्टी तथा सरकार में बड़े पद दिलवाने की भी बातें की गयीं। इसके बाद मुझे जान से मारने की धमकी दी गयीं तथा कहा गया कि यह धमकी माओवादियों ने दी है परंतु माओवादियों ने इसका खण्डन किया। मैंने कंपनी के खिलाफ एफ.आई.आर. दर्ज कराया। सभी जानते हैं यह आंदोलन मेरे दम पर चल रहा है। फिर भी यदि कुछ निहित स्वार्थी मुझे संदेह की निगाह से देखते हैं तो मैं क्या कर सकता हूँ। मैं संघर्षवाहिनी का कार्यकर्ता रहा हूँ, लोगों से भीख माँग–माँग कर आंदोलनों का संचालन किया है, मैं गांधीवादी हूँ– हिंसा में विश्वास नहीं करता हूँ– जैसा मैं पहले था वैसा ही आज भी हूँ। आंदोलनकारी था और आज भी हूँ।"

उड़ीसा में राजनेताओं के इस तरह के दोहरे कारनामों की एक लंबी सूची है। समाचार पत्रों में बयान देकर–छपवाकर ये नेता तथा संबंधित अखबार के पत्रकार वगैरह भी कंपनियों से माल ऐंठने की प्रक्रिया में लगे रहते हैं।

इन दलों के राष्ट्रीय तथा प्रांतीय नेता पुलिस फायरिंग की घटनाओं के बाद जनता के सामने घड़ियाली आंसू बहाने भी पहुंचते रहते है परंतु उड़ीसा विधान सभा में इन हालात पर कभी चर्चा तक नहीं होती।

केंद्र में सत्तासीन यू.पी.ए. के सहयोगी वामपंथी मोर्चे ने भी इन मसलों को कभी एजेण्डे में शामिल नहीं कराया और न ही संसद में ज़ोरदार ढ़ंग से इन मसलों को उठाया। जबकि सी.पी.आई. समेत कई वामपंथी पार्टियां उड़ीसा के जन संघर्षों में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। सी.पी.आई. जो ज़्यादा सक्रिय है उसने भी उड़ीसा की मौजूदा स्थिति को अपने राष्ट्रीय या प्रांतीय ऐजेण्डे में शामिल नहीं किया है। हालांकि सी.पी.आई. महासचिव ए.बी. वर्द्धन इन आंदोलनों के संदर्भ में उड़ीसा गये। समदृष्टि के संपादक सुधिर पटनायक का साफ कहना था कि सी.पी.एम. का उड़ीसा के जन संघर्षों में कोई योगदान नहीं दिखता है। सी.पी.आई (एम.एल.) तथा

सी. पी. आई. (माओवादी) कुछ संघर्षों में मौजूद हैं। किशन पटनायक के साथ जुड़े रहे लोग, समाजवादी जन परिषद, छात्र युवा संघर्षवाहिनी के साथी भी कई जन संघर्षों में अपनी भूमिका अदा करते रहे हैं। लोकशक्ति अभियान के प्रफुल्ल सामंत रे का मत है कि ''कई ऐसे जनसंघर्ष भी चल रहे हैं जिनमें सी.पी.आई (एम.एल.) के किसी भी धड़े का हस्तक्षेप नहीं है। ये स्थानीय जनसंघर्ष हैं तथा इनकी मुख्य ताकत स्थानीय लोग ही हैं तथा इन्हें गांधीवादी, समाजवादी व्यक्तियों संगठनों का समर्थन प्राप्त है जैसे समाजवादी जन परिषद, लोक शक्ति अभियान आदि। कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) की किसी भी जनसंघर्ष में सीधे तौर पर हिस्सेदारी नहीं है। कलिंगनगर में पुलिस फायरिंग के बाद माओवादी मुखर हुए और उन्होंने माइनिंग तथा औद्योगीकरण का विरोध करना शुरू किया। वे आंदोलनों से बाहर रहते हुए भी उद्देश्य तथा मुद्दे का समर्थन करते रहे हैं। पुलिस, सत्ताधारी दल तथा मीडिया का एक बड़ा हिस्सा जारी आंदोलनों को दबाने के लिए इन संघर्षों में माओवादियों के संलिप्त होने का प्रचार करता रहता है। अभी तक उड़ीसा में जारी जनसंघर्ष लोकतांत्रिक तथा अहिंसक ही हैं। जबकि पुलिस ने काशीपुर में 3, रायगढ़ में 5 तथा कलिंगनगर में 14 आंदोलनरत जनों को अपनी गोली का शिकार बनाया है, कंपनी के भाड़े के टट्टुओं–गुण्डों ने काशीपुर में एक, तथा पोस्को विरोधी आंदोलन के एक साथी की हत्या की। उड़ीसा के जनसंघर्षों पर जारी कातिलाना हमलों के बाद भी लोग अहिंसा के ही रास्ते पर कायम हैं। अभी तक केवल एक पुलिसमैन की मौत कलिंगनगर में भीड़ के आक्रमण से हुई है वह भी तब जब 12 आंदोलनकारियों को पुलिस ने मौत के घाट उतार दिया।''

एक आंदोलनकारी का यह कहना था कि कुछ लोग इस तथाकथित विकास को दूसरी औद्योगिक क्रांति के रूप में देख रहे हैं तथा उनका मानना है कि दूसरी औद्योगिक क्रांति के बाद मज़दूर वर्ग क्रांति करके अपनी हुकूमत पूरी दुनिया में कायम करेगा।

राज्य में 'विकास' को लेकर छिड़ी बहस जारी है। राजनीतिक

दल–विशेष तौर पर सत्ताधारी दल विकास के संदर्भ में अपनी स्पष्ट अवधारणा रख पाने से कतराते हैं या खामोश रहकर जारी विकास प्रक्रिया को स्वीकृति प्रदान करते रहे हैं। कांग्रेस और भाजपा तथा इनके सहयोगी दल एक ही राय के हैं परंतु सत्ता से हटने के बाद अपने विरोधी सत्ताधारी दल से नूरा कुश्ती लड़ने लगते हैं।

उड़ीसा के जन संघर्षों के अगुआकार सामान्यतौर पर औद्योगीकरण के विरोधी नहीं हैं उनकी समझदारी है कि औद्योगिक उत्पादन देश की व्यापक आबादी की ज़रूरत के हिसाब से हो – किसी देशी–विदेशी कंपनी के साम्राज्य–मुनाफे के संवर्द्धन के लिए न हो। वे सवाल करते हैं कि एक अरब की आबादी के लिए कितने स्टील की ज़रूरत है। दूसरा उनका मानना है कि कृषि योग्य भूमि पर उद्योगों की स्थापना उचित नहीं है। तीसरा आंदोलनकारियों का यह भी कहना है कि प्रकृति और मनुष्य के बीच संतुलन बरकरार रखकर ही प्राकृतिक संपदा का उपयोग किया जाये। प्राकृतिक संपदा का उपयोग ज़रूरत के हिसाब से किया जाये – मुनाफे या व्यापार के लिए नहीं। सबसे बड़ी बात यह है कि विकास का चरित्र समग्रता वाला है या कुछ मुट्ठीभर लोगों के लिए। क्या उसे विकास कहा जा सकता है जो कुछ लोगों को मालामाल करे और व्यापक आबादी को तबाह कर दे–उजाड़ दे–विस्थापित कर दे।

पहले राजनीतिक दलों के स्थानीय – नेता – कार्यकर्ता तथाकथित विकास के परिणामों तथा उसके दूरगामी प्रभावों के बारे में सामान्यतया अनभिज्ञ थे जैसा कि गंदमारदन में बालको विरोधी आंदोलन में देखने में आया था, जब तमाम राजनीतिक दलों के कार्यकर्ता गंदमारदन में 'माइनिंग' तथा बालको कंपनी के उत्पादन को लोगों के हित में मान रहे थे तथा इसे औद्योगीकरण के रूप में देख रहे थे। अतएव शुरू में बालको कंपनी की योजना का विरोध नहीं कर रहे थे। परंतु आज राजनीतिक दल तथा उनके नेता कार्यकर्ता इन जैसी योजनाओं तथा इनके प्रभावों को अच्छी तरह जान समझ रहे हैं फिर भी या तो इनका समर्थन कर रहे हैं या खामोश हैं।

उड़ीसा जन संघर्षों के साथियों का मानना है कि ऐसा लगता है कि राजनीतिक दलों ने 'विकास की योजनाओं' एवं 'वंचितीकरण की प्रक्रिया' के अन्तः संबंधों को समझने से इंकार कर दिया है और आम जनों से मुंह चुरा रहे हैं।

जबकि उड़ीसा में पिछले समय में चले सफल आंदोलनों – बालको विरोधी आंदोलन (गंदमारदन) एवं गोपालपुर आंदोलन के राजनीतिक प्रभाव भी पड़े हैं। बालको विरोधी आंदोलन के नेता भवानी होता सांसद निर्वाचित हुए, गोपालपुर आंदोलन के नेता नारायण रेडडी (स.पी.आई.) विधायक चुने गये। यदि बगल के राज्य बंगाल पर निगाह डालें तो पता लगता है कि सिंगुर एवं नंदीग्राम के आंदोलनों ने सी.पी.एम. के जनाधार को कमज़ोर किया है।

उड़ीसा के जन संघर्ष एवं स्वंयसेवी संगठनों की भूमिका

उड़ीसा में 'सोशल सेक्टर' में कार्यरत एक वरिष्ठ साथी ने कहा कि गैरसरकारी संगठनों की उड़ीसा में जारी जनसंघर्षों में कोई भूमिका नजर नहीं आती। अतएव उनका जिक्र न करना ही बेहतर होगा। उनका कथन एकदम तथ्यपरक है, परंतु गैर–सरकारी संगठन जनसंघर्षों में अपने योगदान का बखान करते नहीं अघाते। इसलिए जनसंघर्षों के संदर्भ में उनकी निभायी जा रही भूमिकाओं को जानना–समझना तथा मूल्यांकन करना आवश्यक सा प्रतीत होता है।

यह जानना–समझना भी दिलचस्प होगा कि समाज परिवर्तन में एक उत्प्रेरक की भूमिका निभाने की मंशा लेकर कार्य शुरू करने वाले 'स्वैच्छिक संगठन' किस प्रकार 'गैरसरकारी संगठन' बन गये और आगे चलकर 'प्रो–गवर्नमेण्ट ऑर्गनाइजेशन' तथा 'डेवलपमेंट ऑर्गनाइजेशन' के रूप में रूपांतरित हो गये। समाज परिवर्तन के प्रति प्रतिबद्धता से अपनी यात्रा शुरू करके व्यवस्था के प्रबंधतन्त्र के हिस्से कैसे बन गये, उत्प्रेरक की बजाय परियोजनाओं को लागू कराने के विशेषज्ञ कैसे बन गये?

उड़ीसा में सामाजिक संस्थाओं व अभियानों की पहचान पिछली शताब्दी के सातवें दशक में उभरकर सामने आई। सन् 1972 ई. के चक्रवात से हुई तबाही के दौरान और उसके बाद उनके द्वारा किये गये कार्यों से उड़ीसा के जन मानस व सार्वजनिक जीवन में इन्हें मान–सम्मान मिला। इस दौर में सामाजिक अभियानों की प्राण–प्रतिष्ठा में जिन संस्थाओं ने भूमिका निभाई उनमें युनाइटेड आर्टिस्ट एसोसिएशन (U.A.A.), फ्रेण्ड्स एसोसिएशन फार रूरल रीकांस्ट्रक्शन (F.A.R.R.), सी.वाई.एस.डी. (C.Y.S.D.), ग्राम विकास, अन्त्योदय चेतना मण्डल, प्रेम (P.R.E.M.) तथा अग्रगामी प्रमुख नाम हैं।

किन्तु आठवें दशक में जब फण्डिंग और फण्डिंग एजेंसियों की

भारत में अचानक बढ़ोत्तरी हुई और उनमें पारस्परिक प्रतिस्पर्धा चालू हुई तो उसका असर कुछ ठीक नहीं रहा। अपनी प्रोजेक्ट चयन प्रक्रिया में 'पिछड़ेपन' के मापदण्ड को लागू करने के लिए सभी को उड़ीसा का रुख करना लाजिमी हो गया। इसके चलते फण्डिंग एजेंसियों ने ढूंढ़ कर कार्यकर्ताओं को पकड़कर आनन–फानन में संस्थायें खड़ी करना आरंभ कर दिया।

इसी समय फोर्ड फाउण्डेशन द्वारा प्रोत्साहित एवं पोषित 'प्रदान' नामक संस्था ने सामाजिक विकास के सेक्टर में 'प्रोफेशनलिज़्म' का इंजेक्शन देने का बीड़ा उठाया और प्रबंधन एवं प्रौद्योगिकी शिक्षण संस्थानों से दीक्षित युवक–युवतियों को ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले एन.जी.ओ. में नियुक्त करवाना शुरू किया। उड़ीसा के तमाम अग्रणी एवं अग्रज माने जाने वाले एन.जी.ओ. भी इससे बचे न रह सके।

एक तरह से यह माना जा सकता है कि उड़ीसा में सामाजिक संस्थाओं/स्वयंसेवी सेक्टर के विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया इस तरह के हस्तक्षेपों से बाधित हुई और उसका स्वरूप फण्डिंग प्रेरित, फण्डिंगनोमुखी होता चला गया।

फलतः परियोजनाओं की प्राप्ति एवं लागू करने की क्षमता, परियोजनाओं की विविधता, आकार एवं वजन–संस्थाओं की हैसियत तौलने के बटखरे बनते चले गये। ठीक–ठाक फण्ड दिला सकने की कद–काठी रखने वाले लोग संस्थाओं के अतिथि तथा सम्माननीय बनते चले गये। अग्रणी एवं अग्रज की भूमिका निभा रही संस्थाओं ने इन मानदण्डों की समझ को खाद–पानी देकर एक कुशल माली की भूमिका का भी बखूबी निर्वाह किया। इन मालियों ने अपनी ही तरह की बागवानी के विस्तार की उदारता भी दिखाई और इसे अपने तक ही सीमित रखने की क्षुद्रता से परहेज किया।

साथियों का मत है कि इन प्रमुख संस्थाओं ने अन्य संस्थाओं को भी वही सब करने के लिए प्रोत्साहित किया जो वे स्वंय कर रहे हैं। इसमें उन्हें सफलता मिली क्योंकि दाता संस्थाओं तक पहुँच इन्हीं की

थी और उन तक पहुंचने का प्रोफेशनल कौशल भी इन्हीं के पास था। आज इन संस्थाओं का जल, जंगल, ज़मीन पर हकदारी तथा आदिवासियों की अस्मिता जैसे मुददों से कुछ लेना देना नहीं रह गया है। नतीजतन आज इन संस्थाओं के पास देश की राजनीतिक हालात के बारे में तथा इन परिस्थितियों में अपनी भूमिका के बारे में कोई स्पष्ट समझ नहीं है। अतएव बुनियादी सवालों पर पहल करने के बजाय संस्थायें सामाजिक–वानिकी, एड्स, एस .एच .जी, माइक्रो क्रेडिट, वाटर शेड, जेंडर, पहचान, वाटर मैनेजमेण्ट आदि मसलों पर काम करने में ज़्यादा दिलचस्पी ले रही हैं। इसके साथ ही साथ संस्थाओं द्वारा ऐसे कार्य करने का दावा भी किया जाने लगा है जिस कार्य/पहल से उनका कोई रिश्ता नहीं रहा है।

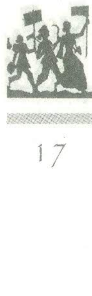

चिल्का आंदोलन में पी.आर.ई.एम. ने वित्तीय मदद की, अग्रगामी ने उत्कल अलमुनाई के खिलाफ आंदोलन की पहल की परंतु आज इन प्रमुख संस्थाओं ने मूल मुददों को छोड़कर पूरे सोशल सेक्टर को प्रभावित–प्रोत्साहित करते हुए उड़ीसा के स्वंय सेवी संगठनों को समस्या के मूलकारणों की बजाय उनके प्रभावों पर कार्य करने अर्थात विनाश का प्रतिरोध करने की बजाय विनाश के घावों पर मरहम लगाने की दिशा में बढ़ने की आधार भूमि तथा समझ का निर्माण किया है। फलतः सामाजिक बदलाव के लिए प्रतिबद्ध कार्यकर्ताओं के बजाय प्रोफेशनल्स को संस्थाओं में महत्व दिया जा रहा है।

अतएव संस्थाओं का बहुमत आज सरकार के अच्छे(?) कामों के साथ है, अच्छी(?) व्यवस्था के साथ तथा अच्छे(?) अधिकारियों के साथ है। अतएव ये संस्थायें अपने उड़ीसा के दिग्गजों – अग्रजों का अनुकरण करती हुई साक्षरता, स्वच्छता, स्वास्थ्य, पर्यावरण, एच .आई .वी .–एड्स अभियानों में लगी हैं तथा अपने झोलों में पुनर्वास नीति तथा विकास पैकेज लेकर टहल रही हैं तथा काशीपुर, लांजीगढ़, कलिंगनगर, जगतसिंहपुर, खण्डधार माइंस, ढिंकिया–नुवागांव–गढ़ कुजंग ग्राम पंचायतों में दाता संस्थाओं की मदद से आदिवासियों का भला (?) करने के लिए जाने की हिम्मत इकटठा कर रही हैं।

आज स्थिति ऐसी प्रतीत होती है कि जन हकदारी की हुंकार से शुरूआत करने वाली ये प्रमुख संस्थायें विश्व बैंक, डी.एफ.आई.डी जैसे संस्थानों के साथ उन्हीं की शर्तों – एजेण्डों – नीतियों के विस्तार के लिए जाने अनजाने में कार्यरत हैं। पढ़ने – पढ़ाने, अध्ययन – विश्लेषण के कार्य में लगी एक संस्था ने तो सर्वे करके, बातचीत करके, कार्यशालायें करके तथा जन सहभागिता को महत्व देते हुए एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट तैयार करके यह बताया कि जन आक्रोश – जन आंदोलनों से निपटने के लिए कंपनियों को अपना प्रोजेक्ट शुरू करने से पहले क्या–क्या करना चाहिए, विस्थापित होने जा रहे लोगों के लिए क्या–क्या कल्याणकारी कार्य करने चाहिए। किस तरह की सावधानी रखी जानी चाहिए। इस संस्था के प्रमुख का कहना था कि यह अध्ययन हमने कंपनियों तथा सरकार को उनके कानूनी कर्त्तव्यों को गिनाने तथा विस्थापितों के अधिकारों को बताने के लिए किया था। इससे यह आशय निकालना कि हम तमाम विवेकहीन, विनाशकारी तथा संवेदनहीन योजनाओं, परियोजनाओं, नीतियों – कानूनों और तौर–तरीकों के कायल हैं – गलत है।

उड़ीसा के जन संघर्षों से जुड़े साथियों का मत है कि संस्थाओं के अंदर आये इस अवसरवाद, प्रोजेक्टवाद तथा भटकाव की ज़िम्मेदारी मुख्य तौर पर उन प्रमुख संस्थाओं की है जिन्होंने उड़ीसा में सोशल सेक्टर के काम की शुरूआत की थी। इन्होंने अन्य संस्थाओं की सही समझ बनाने के बजाय खुद अपनी समझ को व्यवस्था समर्थक बनाया और अन्य को भी उसी रास्ते पर चलने को प्रेरित किया। फिर भी कुछ छोटी छोटी संस्थायें ईमानदारी से कुछ स्थानों पर जन संघर्षों के साथ हैं और अपनी भूमिका परोक्ष या अपरोक्ष रूप से अदा कर रही हैं।

वे संस्थायें जो व्यवस्था परिवर्तन के नज़रिये से अस्तित्व में आयीं, संघर्ष किये, यातनायें सहीं तथा सरकार के द्वारा उत्पीड़न का शिकार भी बनीं आज अपने कारनामों, कार्यक्रमों–गतिविधियों से व्यवस्था पोषक के रूप में आंदोलनकारी संगठनों द्वारा चिन्हित की जा रही हैं। इसके कारणों को समझे बगैर इनका सही मूल्यांकन अधूरा होगा

यह एक अलग अध्ययन का विषय है कि दाता संस्थाओं की शर्तों –एजेण्डों, सरकारी निर्देशों के अनुपालन तथा अफसरों – नेताओं – मंत्रियों – मुख्यमंत्रियों–गर्वनर की चाकरी का रास्ता इन्होंने क्यों चुना या इस रास्ते पर जाने को क्यों बाध्य हुए?

इन सारी हालात का यह प्रभाव हुआ है कि एक हज़ार से भी ज़्यादा गैर सरकारी संगठनों ने डी. एफ. आई. डी. के फण्ड के लिए आवेदन किया है। हालांकि विश्व बैंक एवं डी. एफ. आई. डी. ने पिछली शताब्दी के आठवें दशक से ही 'आर्थिक बेहतरी' के लिए फण्ड देना शुरू कर दिया था परंतु इधर सात–आठ सालों में इनके फण्ड की मात्रा एकाएक बढ़ गई है। पैक्स कार्यक्रम का विस्तृत खाका उड़ीसा के लिए भी डी.एफ.आई.डी. ने बनाया है।

आज हालात यह है कि स्पष्ट विश्लेषणात्मक समझ के अभाव में अधिकांश संस्थायें अपनी भूमिका ही समझ नहीं पा रही हैं। ऐसा लगता है कि वे अंधेरे में डूबे रंगमंच पर तलवारें बड़े परिश्रम से भांज रहे हैं परंतु उन्हें मालूम नहीं कि वे किसे मार रहे हैं तथा किसे बचा रहे हैं। वे अपनी 'ग्रीन रूम' की भूमिका के निर्वाह में भी सक्षम नहीं दिखतीं। अधिकांश मामलों में यह लगता है कि ये संस्थायें फण्ड के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार हैं। कोई भी शर्त मानने के लिए तैयार हैं। उन्होंने जो अपनी इमारतें, स्टाफ, घोड़ा गाड़ी आदि खड़ी की है उसे जारी रखने के लिए वे कुछ भी करने को विवश दिखते हैं। फण्ड के चलते संस्था के प्रमुख लोगों की ज़रूरतों, लाइफ साइकिल, जीवन जीने के तरीकों एवं आदतों में आये बदलाव भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाते नज़र आते हैं। इसी प्रकार सामाजिक क्षेत्रों में बाहरी संस्थायें तथा स्थानीय संस्थायें और लोग का मामला भी अपनी भूमिका अदा कर रहा था फलतः जो बाहरी थे उन्होंने सरकारी कार्यक्रमों का दामन थाम लिया। इस प्रकार सरकार के प्रबंधन के हिस्से बन गये और सरकार के अच्छे (?) कामों में लग गये।

आंदोलनों को कमज़ोर करने में भी संस्थायें जाने–अनजाने में तथा

परोक्ष–अपरोक्ष रूप से अपनी भूमिकायें निभाती हैं। उदाहरण के तौर पर यह देखने में आया कि 'ग्रास रूट' कार्यकर्ताओं या समुदाय के संवेदनशील लोगों को राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय मंचों में अपनी संस्था की तरफ से बार बार लगातार भेजने से उनका संपर्क अपने समुदाय से कम होने लगता है – सामुदायिक पहल कमज़ोर पड़ने लगती है और कई बार ये कार्यकर्ता अपने समुदाय में बहिष्कृत तक हो जाते हैं।

महिला संगठनों–आंदोलनों के संदर्भ में यदि देखें तो साफ दिखता है कि महिला आंदोलनकारियों को स्वंय–सहायता समूहों से जोड़कर संस्थाओं ने महिला पहल को कमज़ोर किया है। कालाहाण्डी जनपद की एक प्रमुख महिला आंदोलनकारी का तो यहां तक कहना था कि वास्तव में यह महिला आंदोलनों के साथ षडयंत्र हैं। हालांकि संस्थायें अपने सुनिश्चित उद्देश्य साधने में, अपनी कद काठी बढ़ाने में सफल हो जाती हैं, परंतु सामुदायिक पहल कमज़ोर हो जाती है और कार्यकर्ता अपने ही समुदाय में अकेले पड़ते जाते हैं। ऐसी ही एक परिस्थिति लांजीगढ़ में वेदांत कंपनी के खिलाफ संघर्षरत लोगों के साथ आयी जब एक आदिवासी नेता कुमटी माझी को एक दाता संस्था लंदन ले गयी और बताया कि वहां पर विस्थापन के खिलाफ अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन है। परंतु कुमटी माझी ने देखा कि वहां आयोजित मीटिंग में वेदांत कंपनी का मालिक अनिल अग्रवाल भी मौजूद है। सहज ढंग से कल्पना की जा सकती है कि कुमटी माझी ने लौटकर अपने साथियों का कैसे सामना किया होगा?

इसी प्रकार जाने या अनजाने में कई संस्थायें अपनी तथाकथित स्टडी, सर्वे आदि करके दाता संस्थाओं को ऐसी सूचनायें उपलब्ध कराती हैं जिसके आधार पर दाता–संस्थायें अपनी आगामी रणनीति का निरूपण करती हैं और साथ ही अपने 'डोनर्स' को बाज़ार में दखल देने की कार्ययोजना हेतु सहूलियत पहुंचाती हैं। इसी कोटि में भुवनेश्वर स्थित एक संस्था द्वारा विश्व बैंक डी.ए.आई.डी. आदि की सहूलियत के लिए सर्वे, स्टडी का कार्य रखा जा सकता है।

प्रमुख संस्थाओं ने ज्ञान–जानकारी–सूचना आदि उपलब्ध कराने

के लिए परचे, पुस्तिकायें लिखीं, दस्तावेज बनाये, वेब साइट्स बनाये परंतु दृष्टिकोण निर्माण की अपनी गुरूतर ज़िम्मेदारी से कतराते रहे। कुछ ने तो ऐसी समझ के निर्माण की पहल की जो व्यापक आबादी के लिए जानलेवा तथा विनाशकारी है।

साथियों से बातचीत करने पर यह बात भी उभरकर आई कि संस्थाओं के बीच एकजुट पहल की बात तो दूर आपस में घटिया स्तर पर उतर कर आपस में एक दूसरे के चरित्र हनन की प्रक्रिया अनवरत तेज़ होती जा रही है। जिसने संस्थाओं को और संदिग्ध बना दिया है।

नयी सूचना तकनीक का इस्तेमाल करके अपने आप को आंदोलनों का अगुआ सिद्ध करने वालों तथा कागज़ी आंदोलनों की बाढ़ सी आयी दिखती है। आंदोलन कोई और कर रहा है और श्रेय कोई और ले रहा है यह भी झगड़े की एक जड़ है। इससे अविश्वास तथा आशंका बढ़ रही है।

लोगों का तो यहां तक कहना है कि 'एक्शन एड' जैसी दाता संस्थाओं की भूमिका अत्यंत ही नकारात्मक है। उनकी इस भूमिका को जान–समझ कर जन संघर्षों में लगे लोगों ने इस दाता संस्था को कलिंगनगर, जगतसिंह पुर तथा लांजीगढ़ से बोरिया बिस्तर बांधने को बाध्य किया है। हांलाकि लोग यह भी कह रहे हैं कि यह दाता संस्था स्थानीय एन .जी .ओ . एवं दिल्ली के कुछ तथाकथित समाजसेवी बुद्धिजीवियों के बल पर आज भी इन आंदोलनों में हस्तक्षेप के सपने देख रही है। वेदांत कंपनी के खिलाफ लांजीगढ़ में चल रहे आंदोलन से जुड़े एक साथी का तो यहां तक कहना था कि आंदोलन की मदद में बने कालाहाण्डी सचेतन नागरिक मंच के नाम का एक्शन एड एवं खासतौर पर इसके इंचार्ज दुरूपयोग करते रहे हैं। संस्थाओं से जुड़े कुछ लोग, कुछ संस्थायें तथा आंदोलनों के मददगार होने का दावा करने वाले कुछ लोग रिपोर्ट, बयान, परचे, पेटिशन वगैरह बनाकर आंदोलनों में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने तथा इसे भुनाने की प्रक्रिया में लगे हैं। इनकी न तो कोई प्रतिबद्धता है

और न ही दृष्टिकोण। ये भाषा, दस्तावेजीकरण तथा सूचना तकनीक के विशेषज्ञ अपनी विशेषज्ञता की सेवायें किसी को भी उपलब्ध कराने को तत्पर दिखते हैं। सेवायें उपलब्ध कराते समय इस बात पर कभी सवाल नहीं पूछते कि उनकी सेवायें किसके हित तथा किस प्रयोजन के लिए हैं।

इन सारी स्थितियों का प्रभाव यह है कि संस्थायें दिशाहीन सी हो गई हैं। जन संघर्षों के बारे में इनकी कोई सोच ही नहीं है। इनके बीच एक तरफ तो अवसरवादी लोग हैं दूसरी तरफ निराश और हताश लोग। लेकिन इन दोनों में एक साम्यता है कि उन्होंने अपनी मौलिक दृष्टि, दिशा को त्याग दिया है।

परिणामतः अजीब अजीब नज़ारे देखने को मिल रहे हैं। भुवनेश्वर स्थित एक महत्वपूर्ण संस्था के प्रमुख जो कभी गंदमारदन आंदोलन के सक्रिय लोगों में थे आज जल–जंगल–ज़मीन पर हकदारी के मुद्दे पर पहल करने के बजाय कृषि उपकरणों की डिज़ाइनिंग पर कार्य कर रहे हैं। कलिंग नगर के एक स्थानीय एन.जी.ओ. के प्रमुख कार्यकर्ताओं ने बताया कि उनके क्षेत्र की सबसे बड़ी समस्या शौचालय एवं सड़क की है। कालाहाण्डी जिले के संतपुर गांव के युवकों ने बताया कि हमारा एन.जी.ओ. भ्रष्टाचार को सबसे बड़ा मुद्दा मानता है।

आज जब उड़ीसा में भूख, जीविका, विस्थापन, पलायन, जल–जंगल–ज़मीन की रक्षा, देशी विदेशी कंपनियों द्वारा की जा रही लूट, सरकार की पूंजी की चाकरी की भूमिका, जन आंदोलनों के प्रति सरकार की दमनकारी नीति आदि मुद्दे प्रमुखता लिए हुए हैं तो ऐसे में तमाम संस्थाओं की उपरोक्त समझ और पहल उन्हें किस स्थिति में ले जायेगी – कल्पना करना अत्यंत सहज है।

लांजीगढ़ एवं पोस्को विरोधी आंदोलन से जुड़े कई साथियों का तो स्पष्ट मत था कि एन.जी.ओ. से कोई उम्मीद नहीं करनी चाहिए। इनकी सोच में बदलाव भी असंभव है। इनकी भूमिका नकारात्मक ही है।

एन. जी. ओ. से जुड़े एक साथी का कहना था कि ''हमारी स्थिति बहुत ही खराब है, कंपनी मानती है कि हम आंदोलनकारियों के साथ है और आंदोलनकारी मानते हैं कि हम कंपनी और सरकार के एजेण्ट हैं। हमारी स्थिति बहुत बुरी है और लगता है कि हमारी मौत कुत्तों की तरह होगी।'' इस बयान से उड़ीसा के जन संघर्षों में गैर सरकारी संगठनों की स्थिति का सहज अंदाजा लगाया जा सकता है।

इसीलिए काशीपुर, लांजीगढ़, कलिंगनगर, पोस्को विरोधी आंदोलन जैसे जन संघर्षों में किसी भी स्थापित गैर सरकारी संगठन की कोई भूमिका नज़र नहीं आती। यदि कभी इनकी भूमिका थी भी तो आज वह बची नहीं है। स्थानीय स्तर के ज़मीनी स्तर पर कार्यरत कुछ एन. जी. ओ. यदा कदा आंदोलनों के इर्द गिर्द दिख जाते हैं। आज आंदोलनकारियों एवं प्रभावित समुदाय के बीच संस्थायें संदेह एवं अविश्वास की निगाह से देखी जा रही हैं।

एन. जी. ओ. एवं दाता संस्थाओं के बारे में लोगों की यह राय बनने के भी कारण हैं। लांजीगढ़ में नियामगिरि पर्वत के नीचे स्थित ग्रामवासियों के बीच एक्शन एड ने यह प्रचारित कर रखा है कि वेदांत विरोधी आंदोलन का संचालन वही कर रहा हैं। काशीपुर आंदोलन जो लगभग 10 वर्षों से चल रहा है उसमें 'अग्रगामी' की भूमिका थी परंतु 'अग्रगामी' ने किसी और संस्था/संगठन को आंदोलन से जोड़ना तो दूर रहा, नज़दीक भी नहीं फटकने दिया। 'अग्रगामी' आंदोलन में नहीं है परंतु कंपनी को भी कभी सपोर्ट नहीं किया। इसके अगुआ अच्युतदास का आज भी क्षेत्र में सम्मानित स्थान है तथा यह संस्था पिछले समय में सरकारी उत्पीड़न का शिकार बनती रही है। पोस्को विरोधी आंदोलन में भी एक्शन एड ने घुसपैठ का प्रयास किया, इनके कार्यकर्ता वहां पर पुनर्वास पैकेज के परचे बांट रहे थे। पोस्को प्रतिरोध संग्राम समिति का कहना है कि उन्होंने वहां से एक्शन एड को भागने को बाध्य किया। इसी प्रकार लोगों का कहना है कि गोपालपुर के आंदोलन में भी ग्राम विकास समिति ने टाटा से पैसा लिया था परंतु वे जनता के बीच में घुसपैठ नहीं कर पाये। इस संस्था ने तो पोस्को के साथ उड़ीसा सरकार से कंपनी लगाने, माइनिंग

करने की फरियाद करने वाली कंपनी बी. एच. पी. बिलिटान आस्ट्रेलिया से भी फण्ड लिया है जबकि बात माइनिंग के खिलाफ करते हैं। कलिंगनगर में भी आंदोलनकारियों का यह कहना है कि स्थानीय एन.जी.ओ. टाटा से पैसा लेकर आंदोलन तोड़ने का प्रयास कर रहे हैं तथा यह प्रचारित कर रहे हैं कि कलिंगनगर इण्डस्ट्रियल एरिया में इतने कारखाने लगे उनका विरोध क्यों नहीं हुआ? अकेले टाटा की कंपनी का ही विरोध क्यों किया जा रहा हैं? कलिंगनगर में टाटा एवं सरकारी सहायता से 'कोटि्ट', खाबो, पल्ली विकास, पल्ली श्री जैसी संस्थायें टाटा कंपनी के हित में कार्य कर रही हैं। टाटा की योजनाओं एवं विदेशी दाता संस्थाओं के कार्यक्रमों को एन. आई. एस. डब्लू. (गोंडिया—जिला धेकनाल) नामक संस्था द्वारा क्रियान्वित किया जा रहा है। इसमें टाटा रूरल डेवलपमेंट एजेंसी की मुख्य भूमिका नज़र आती है। इसी प्रकार चिल्का आंदोलन में भी पल्लीश्री चिल्का डेवलपमेंट एजेंसी के साथ मिलकर विदेशी दाताओं आर. सी. जे., जे. एफ. जी. ई. (जापान) से फण्ड लेकर आंदोलन तोड़ने की भूमिका में रहा है। ये तो थोड़े से उदाहरण हैं जो एन. जी. ओ. के कारनामों पर थोड़ा सा प्रकाश डालते हैं।

अतएव एन. जी. ओ. के बारे में यदि लोगों की आम राय नकारात्मक है तो कुछ एन. जी. ओ. के समर्पित तथा जुझारू होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। एन. जी. ओ. से जुड़े साथियों को अपने गिरेबां में झांककर असलियत से रू—ब—रू होना चाहिए तथा आमजनों के द्वारा उठाये जा रहे सवालों का जवाब देना चाहिए। परंतु उड़ीसा में यह कार्य भी एन. जी. ओ. नहीं कर पा रहे हैं। फलतः सभी एन. जी. ओ. को एक ही रूप में देखा जा रहा है जिसका दुष्प्रभाव उन संस्थाओं पर भी पड़ रहा है जो आमजन के प्रति समर्पित तथा संवेदनशील हैं।

कालाहाण्डी महिला महासंघ की संध्या का कहना है कि संस्थाओं के अभियानों में महिलायें तथा निर्धन तबके के लोग भारी संख्या में शामिल होते रहे हैं परंतु संस्थाओं के संचालकों ने उन्हें कभी नेतृत्वकारी भूमिका में न तो लाने का प्रयास किया और न आने दिया।

महिला आंदोलनों को आगे बढ़ाने में मदद करने के बजाय संस्था ने उनका एनजीओकरण कर डाला। भूख और जीविका पर हो रही पहल तथा बहसों को विकास, जेंडर, आइडेंटिटी तथा इनकम जेनरेशन, माइक्रो क्रेडिट में योजनाबद्ध ढंग से तब्दील कर दिया गया। सन्ध्या का कहना था कि यह बदलाव महिलाओं–गरीबों के लिए नहीं बल्कि संस्थाओं ने अपनी ज़रूरतों के आधार पर किया। संस्थाओं में पहले अनपढ़ तथा पढ़ी लिखी दोनों तरह की महिलायें कार्य करती थीं परंतु अभी ज़्यादा पढ़ी लिखी – प्रोफेशनल महिलायें ही रह गयी हैं फलतः ये महिलायें आम महिलाओं के दर्द को न तो समझती हैं और न इसके प्रति संवेदनशील हैं। इनका पूरा ध्यान अपने कैरियर पर रहता है।

सफल जन संघर्षों में महिलाओं की प्रमुख भूमिका रही है। सुमनी झोरिया, मुक्ता झोरिया अनपढ़ थीं परंतु राज्य योजना आयोग की सदस्य बनीं। एक कंपनी द्वारा प्रायोजित होने के नाते इन्होंने पुरस्कार लेने से इनकार कर दिया। ये महिलायें बीजू पटनायक के कार्यकाल में आदिवासी विकास परिषद् (उड़ीसा सरकार) की सलाहकार भी थीं। शराबबंदी के खिलाफ पहल की ज़िम्मेदारी सरकार ने महिला संगठन 'अमगा' को दी थी। महिलाओं – आदिवासियों को आगे लाने में जिन लोगों ने प्रमुख भूमिका निभाई थी उन्हीं लोगों ने अपनी संस्थायें पंजीकृत करा लीं, संस्था प्रमुख बन गये, फण्डिंग में लग गये। समझौता परस्त परियोजनाओं के काम में लग गये। छोटे छोटे मुद्दे लेकर प्रोजेक्ट शुरू हो गये तथा आंदोलनों की तरफ पीठ कर ली गयी। महिला कार्यकर्ताओं को कोई प्लेटफार्म नहीं उपलब्ध कराया गया फलतः कुछ को प्रोजेक्ट में घसीट लिया गया बाकी को उनके हाल पर छोड़ दिया गया। इस प्रकार संस्थाओं ने जन संघर्षों की प्रमुख ताकत को अपने ही कारनामों के द्वारा जन संघर्षों से अलग कर दिया। सन्ध्या का यह कथन बिल्कुल सही प्रतीत होता है क्योंकि आज अधिकांश संस्थाओं की यही स्थिति है और दाता संस्थाओं में भी किताबी ज्ञान वाले प्रोफेशनल्स ही कार्यरत हैं। जिनकी न तो कोई प्रतिबद्धता है और न ही कोई दृष्टि, न ही जन पहल का कोई अनुभव।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि उड़ीसा में स्थापित संस्थाओं का एजेण्डा 'पीपुल्स एजेण्डा' से 'इस्टेब्लिशमेंट एजेण्डा' की तरफ शिफ्ट हो गया है। अधिकांश संस्थाओं ने सेवाभाव तथा प्रोजेक्टवाद को स्वीकार कर लिया है जिन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया है वे अंकुरन तथा अग्रगामी की तरह संकटों से घिरे हुए हैं। एकता परिषद जैसे संगठन सत्ता दल के नेताओं मुख्यमंत्रियों की प्रशंसा में कसीदे कसने लगे हैं चाहे वे फासीवादी सांप्रदायिक दल के ही क्यों न हो? गोया कि सांप्रदायिक फासीवाद गरीबों के लिए कोई खतरा नहीं है।

बहुमत संस्थायें पूंजी की सर्वग्राही चुनौती की समझ से दूर हैं, इस समझ के न होने से वे कोई निर्णायक फैसला नहीं ले पा रहे हैं। इनमें चुनौती का सामना करने की न तो समझ और मानसिकता है और न ही चाहत। फलतः भूमि, वन, पानी तथा जीविका के मुद्दे इनके द्वारा छोड़ दिये गये हैं क्योंकि ये मुद्दे खुली चुनौती की मांग करते हैं, पूंजी के निशाने पर हैं तथा पूंजी की चाकर सत्ता इन मुद्दों पर प्रतिरोध–विरोध सहन करने को तैयार नहीं है। वह अपने महाप्रभु एवं उसके गणों को प्रसन्न करने के लिए न केवल देश की संप्रभुता को गिरवी रख चुकी है वरन अपने नागरिकों के हितों के खिलाफ आचरण करते हुए काशीपुर, कलिंगनगर, गुड़गांव, नोएडा को बार–बार दोहराने को कृत संकल्प। इन परिस्थितियों एवं चुनौतियों से निपटने की इच्छा तथा सामर्थ संस्थाओं में है नहीं। इनसे निपटने के लिए व्यापक जन आंदोलन ही सक्षम हो सकता है जिसका सरोकार परिवर्तनकारी संघर्षों से हो।

उड़ीसा में जारी जन संघर्षों की स्थिति

बरगढ़ जिले के बालको विरोधी गंदमारदन आंदोलन, गोपालपुर आंदोलन तथा चिल्का आंदोलन जैसे आंदोलनों की विजय का सेहरा उड़ीसा के जन संघर्षों के सिर बंधा हुआ है। परंतु गंदमारदन वेदांत कंपनी को देने, चिल्का झील में मार्केटिंग काम्पलैक्स बनाने की तैयारियां चल रही हैं और गोपालपुर की भूमि आज भी व्यर्थ पड़ी हुई है। अतएव इन आंदोलनों में मिली सफलता को बनाये रखना उड़ीसा के जन संघर्षों के लिए एक नयी चुनौती है।

काशीपुर आंदोलन आज 10 वर्षों से भी ज़्यादा समय से जारी है। पिछले समय में सरकारी दमन ने आंदोलन को कमज़ोर सा कर दिया था परंतु आज भी आंदोलन जारी है तथा कंपनी अपना काम नहीं कर पा रही है। श्री जगदीश प्रधान (सहभागी विकास अभियान) का कहना है कि वर्ष 1993 में अखबारों में लेख लिखकर उन्होंने काशीपुर की माइनिंग योजना के बारे में जानकारी दी, स्थानीय लोगों तथा विधायक तक को इस बारे में जानकारी नहीं थी, शुरूआती दौर में गांधीवादियों, किशन पटनायक तथा अग्रगामी ने पहल ली। स्थानीय आदिवासियों का नेतृत्व था। मांग की गयी पूरी सूचना दी जाय, मुआवज़ा दिया जाय, कंपनी के मुनाफे का मुख्य भाग स्थानीय विकास पर खर्च किया जाय। उस वक्त तक माइनिंग या प्रोजेक्ट का विरोध नहीं किया जा रहा था। जब अन्य लोग तथा बाहरी लोग आये तब प्रोजेक्ट एवं माइनिंग का पूर्ण विरोध आरंभ हुआ जो आज तक जारी है। इस आंदोलन में वामपंथी क्रांतिकारियों की भूमिका आज सबसे ज़्यादा महत्वपूर्ण है। श्री प्रधान का कहना है कि काशीपुर में ऐसे भी लोग हैं जो मुआवज़ा मांगते हैं मिलने पर चुप हो जाते हैं। परंतु काशीपुर आंदोलन से जुड़े लोगों ने इस बात का खण्डन किया।

प्रफुल्ल सामंत रे का कहना था कि 2 साल में फैक्ट्री की चहारदीवारी, पुलिस स्टेशन बना परंतु माइनिंग अभी तक शुरू नहीं

हो पायी है। हालांकि आंदोलन में निराशा दिखती है फिर भी आंदोलन में स्थानीय लोगों की व्यापक भागेदारी रही है।

अभी हाल में कंपनी के प्रस्तावित निर्माण कार्य का जबर्दस्त विरोध किया गया तथा लगभग 5–6 महीनों से निर्माण कार्य ठप्प है। उड़ीसा बचाओ अभियान से जुड़े निकुंज तथा विजय पाण्डा का कहना था कि दिसंबर 2000 में पुलिस फायरिंग के बाद बी.जे.डी तथा कांग्रेस ने कंपनी के समर्थन में संयुक्त रैली की। इसका प्रभाव यह हुआ कि स्थानीय आदिवासियों ने इन दलों से रिश्ता रखने वाले अपने रिश्तेदारों तक से संबंध समाप्त कर लिया। काशीपुर में कंपनी समर्थक तथा कंपनी विरोधी खेमों का स्पष्ट निर्माण हो चुका है। काशीपुर आंदोलन को समाप्त कर देने के लिए तमाम ताकतें लगी हैं क्योंकि काशीपुर तथा गंदमारदन के आंदोलन उड़ीसा के प्रमुख आंदोलनों में से हैं। लेकिन स्थानीय लोगों की एकता, जागरूकता तथा आंदोलन का कुशल नेतृत्व आंदोलनों के खिलाफ हर तरह की साजिशों का मुकाबला करने में अभी तक पूर्णतया सक्षम रहा है। भगवान माझी, देवरंजन सरोज जैसे आंदोलनकारी आंदोलन के साथ मुस्तैदी से डटे हुए हैं।

वेदांत कंपनी (स्टरलाइट) के विरोध में लांजीगढ़ में चल रहे नियामगिरि आंदोलन की सबसे कमज़ोर कड़ी यह रही कि वहां पर वेदांत कंपनी का प्लांट बन गया तथा बाहर से बाक्साइट लाकर उन्होंने उत्पादन शुरू कर दिया है। लड़ाई अब नियामगिरि की माइनिंग के खिलाफ केंद्रित है। वहां पर माइनिंग करने की इजाज़त भी सर्वोच्च न्यायालय ने दे दी है। यह क्षेत्र बहुत ही निर्धन तथा पिछड़ा हुआ है यहां के 78 प्रतिशत आदिवासी गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करते हैं। भूख उनका मुख्य सवाल है। वास्तव में यहां कंपनी बनने का कारण यह है कि बाक्साइट की सबसे बेहतरीन क्वालिटी लांजीगढ़ के आसपास के पहाड़ों में ही है। वेदांत प्लांट के लिए पानी तथा बिजली उपलब्ध कराने हेतु इन्द्रावती एरिया में थर्मल प्लांट प्रस्तावित है क्योंकि यहां पानी उपलब्ध है। कांग्रेस ने चुनाव के समय लांजीगढ़ प्रोजेक्ट शुरू करने का वादा किया था। भक्तचरण

दास ने रेलवे लाइन (लांजीगढ़–जूनागढ़) बनाने की स्वीकृति दिलाई थी। अटल बिहारी वाजपेयी के कार्यकाल में इस प्रोजेक्ट को स्वीकृति मिली थी। नियामगिरि सुरक्षा समिति, भूमि सुरक्षा समिति, सचेतन नागरिक मंच, ग्रीन कालाहाण्डी आदि संगठन इस आंदोलन में अपने अपने ढंग से लगे हुए हैं। आंदोलनकारियों पर पुलिस लाठीचार्ज तथा उनकी गिरफ्तारियां हुई हैं और कंपनी की गुण्डावाहिनी ने भी कार्यकर्ताओं–नेताओं पर हमले किये हैं। नियामगिरि में बाक्साइट की माइनिंग के खिलाफ आंदोलन जारी है। समाजवादी जन परिषद, लिंगराज आजाद, राज किशोर तथा प्रेम आदि साथियों ने इस आंदोलन की शुरूआत की थी। साथी लिंगराज आजाद की आज भी प्रमुख भूमिका है। सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बाद आंदोलन में तेज़ी आयी है। इस आंदोलन में वामपंथी, समाजवादी, सर्वोदयी तथा कांग्रेस एवं बी.जे.डी. के कुछ हिस्से शामिल हैं। दै सिंह माझी, कुमटी माझी, सत्य नारायन महार, सिद्धार्थ नायक, राजेन्द्र भारतीय, लीला, जीतू, चन्द्रमनि महानन्द, गिरधारी, अर्जुन चण्डी जैसे लोग भी अपनी सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं। भक्तचरण दास की 'ग्रीन कालाहाण्डी' की पहल को कई आंदोलनकारी संदेह की निगाह से देखते रहे हैं। आंदोलनकारियों में एकजुटता की कमी है परंतु स्थानीय लोग एकजुट हैं। इस आंदोलन में कुछ एन.जी.ओ. तथा दाता संस्थायें भी मौजूद रही हैं। खास तौर पर 'परिवर्तन', 'फार' तथा 'न्यू होप' ऐसा दावा करते रहे हैं।

इस आंदोलन के संदर्भ में एक बात समझ में नहीं आती कि इस क्षेत्र में गंद मारदन आंदोलन एक सफल आंदोलन के रूप में सामने था। गंद मारदन आंदोलन वर्ष 1984–85 तक एक आकार ले चुका था। 1987 के आसपास स. ज. प. के लोग भी सक्रिय हुए बाद में किशन पटनायक के शामिल होने के बाद आंदोलन और तेज़ हुआ और अन्ततः बालको कंपनी को वापस जाना पड़ा था। छात्र–युवा संघर्षवाहिनी का आंदोलन क्षेत्र में मौजूद था, गंदमारदन आंदोलन से जुड़े आंदोलनकारी मौजूद थे, सन 2001 में ही समाजवादी जन परिषद ने पहल की, नियामगिरि सुरक्षा समिति की स्थापना की गई,

पहली बैठक में ही एक हज़ार लोग मौजूद थे फिर वेदांत कंपनी का प्लांट बिना किसी व्यापक प्रतिरोध–विरोध के कैसे बन गया? सन 2002 में इस जन संघर्ष में एन. जी. ओ. कैसे घुस आया? भक्तचरण दास के 'ग्रीन कालाहाण्डी' बनाते ही आंदोलन में टूट कैसे पैदा हो गई? आदिवासी मीटिंगों में आने जाने के लिए किराया–भाड़ा तथा खाने नाश्ते के लिए पैसे की मांग किन वजहों से प्रेरित होकर करने लगे? कुमटी माझी कैसे लंदन पहुंच गये? भक्तचरण दास की भूमिकाओं को लेकर जारी संदेहों पर उनसे स्पष्टीकरण क्यों नहीं मांगा गया तथा लोगों के सामने क्यों नहीं रखा जा सका? एक्शन एड जिसके बारे में समदृष्टि के संपादक सुधीर पटनायक का मत है कि ''वह खुद ही कन्फ्यूज़ है तथा भुनाने की प्रक्रिया में लगा है'' – को आंदोलन में प्रवेश कैसे मिल गया? सभी का स्वागत करने की आदर्शवादी सोच चाहे वे एन.जी.ओ., फण्डिंग एजेंसी, कंपनी तथा प्रोजेक्ट के समर्थक राजनीतिक दल हों चाहे उनके नेता आदि हों जो एक रणनीतिक भूल थी का क्या कारण था? इस संघर्ष में लगे साथियों के बीच में एनजीओ, राजनीतिक दलों तथा 'ग्रीन कालाहाण्डी' से संबंधों के बारे में मतभेद हैं परंतु वे सावधानी बरतते हुए आंदोलन की एकजुटता के प्रति चिंतित हैं।

रायगढा जिले के सकठा गाँव में आंदोलनकारियों की पहल पर बुलाई गयी सभा में दो राजनीतिक दलों के नेताओं ने आपस में एक दूसरे पर कीचड़ उछालने का ही काम करके उपस्थित लोगों को निराश किया। सबसे ज्यादा निराशा की हालत में जीतू नाम का वह नवयुवक आदिवासी था जो इस सभा का मुख्य आयोजक था।

परंतु इस सभा के अगले दिन ही इसी जनपद के गाँव गरदा में 17 गाँवों से आये आदिवासी नेताओं और नियामगिरि सुरक्षा समिति से जुड़े लोगों ने माथापच्ची करके यह तय किया कि ''आंदोलन में यदि कोई जुड़ता है तो हम उसे मना नहीं करेंगे परंतु निर्णय एवं संचालन स्वंय करेंगे। राजनीतिक दलों की वोट की भूख स्वाभाविक है परंतु हम उनके बहकावे एवं बँटवारे से बचेंगे तथा आंदोलन में जीत के बाद यह तय करेंगे कि किसको किस दल के साथ जाना

है या किसी भी दल में नहीं जाना है। हम राजनीतिक दलों से कहेंगे कि वे ऐसा कोई कार्य न करें जिससे आंदोलन कमजोर हो।

कलिंगनगर इण्डस्ट्रियल एरिया में नीलांचल इस्पात निगम लिमि. (उड़ीसा सरकार), जिंदल स्टेनलेस स्टील लिमि. मेस्को, वीजा इण्टरनेश्नल स्टील लिमिटेड, दीन बंधु स्टील, मैथन इस्पात लिमि., के.जे. इस्पात लिमि. रोहित स्टेनलेस स्टील, महाराष्ट्रा स्टील लिमि. आदि सरकारी, निजी तथा एन.आर.आई. मालिकों की कंपनियां कार्यरत हैं। ये छोटी कंपनियां हैं तथा ज़मीन के छोटे छोटे टुकड़ों में स्थित हैं। इनके स्थापित होने से बहुत कम लोगों को विस्थापित होना पड़ा था। इन कंपनियों ने लोगों के लिए कल्याणकारी कार्य करने का वादा भी किया था। लोग जागरूक तथा संगठित भी नहीं थे। साथ ही पूरे इलाके में वैध–अवैध रूप से पत्थर की खदानें चल रही थीं। अतएव इन कंपनियों का विरोध नहीं किया गया। शुरू में ग्राम समाज, वन विभाग तथा सरकारी ज़मीनों का ही अधिग्रहण किया गया था – निजी ज़मीनें नहीं ली गयीं थी। परंतु बाद में जब कंपनियों तथा सरकार ने वादा खिलाफी किया, स्थानीय स्तर पर विकास तथा कल्याणकारी कार्य नहीं किये गये, स्थानीय लोगों को रोज़गार नहीं मिला, आने जाने के रास्तों को रोका जाने लगा तथा चरागाहों को प्रतिबंधित किया जाने लगा तो स्थानीय लोग इन प्रक्रियाओं के विरोध में एकजुट होने लगे थे।

इसी बीच में टाटा स्टील एण्ड माइनिंग कंपनी को फैक्ट्री लगाने के लिए 850 एकड़ तथा माइनिंग के लिए 478 एकड़ ज़मीन उड़ीसा सरकार द्वारा लीज पर दे दी गयी। यह ज़मीन 4 आदिवासी ग्राम पंचायतों को प्रभावित करेगी तथा लगभग 36000 लोगों को विस्थापित करेगी। जाजपुर जनपद के सुकिण्डा ब्लाक की गोबरघाटी, डुबरी, बारागडिया ग्राम पंचायतें तथा चाण्डिया, मणीतीरा ग्राम पंचायतें (डनगड़ी ब्लाक) इसमें शामिल हैं। इस इलाके में क्रोमाइड, यूरेनियम, बाक्साइट एवं सोना जमीन के अंदर पहाडों में मौजूद है परंतु आयरन ओर बहुत कम मात्रा में हैं। सुकिण्डा स्थित उड़ीसा महिला विकास समिति की सावित्री पाण्डा तथा रमेश सामल

का कहना है कि टाटा कंपनी के खिलाफ आंदोलन इसलिए एकाएक तेज़ हुआ कि कलिंगनगर औद्योगिक क्षेत्र में पहले लगायी गयी कंपनियों के द्वारा केवल प्रत्येक कंपनी से 250–300 लोग ही प्रभावित हुए थे तथा उन्हें प्रलोभन देकर, पुलिस का इस्तेमाल करके काबू कर लिया गया था परंतु टाटा कंपनी के लगने से एक बहुत बड़ी आबादी प्रभावित होने जा रही है। अतएव लोग आंदोलन की राह पर आगे बढ़ने को विवश हुए। साथ ही पहले लगी कंपनियों की वादाखिलाफी स्थानीय लोग देख चुके हैं। उन्हें अपनी ज़मीन, पहाड़, जंगल तथा अपनी बस्तियां छिनने का आसार साफ दिखने लगा है। अतएव पहले से प्रभावित लोग और भविष्य में प्रभावित होने जा रहे लोगों की स्वाभाविक एकता ने आंदोलन के लिए एक मज़बूत भूमि तैयार की।

राष्ट्रीय स्तर के सामाजिक कार्यकर्ताओं–नेताओं तथा एक्शन एड की पहल पर शुरूआती दौर में कंपनी के विरूद्ध संघर्ष हेतु 'आदिवासी विकास मंच' का गठन किया गया। मंच ने अपनी गतिविधियां आरंभ की। 2 जनवरी 2006 को आंदोलनकारियों पर पुलिस फायरिंग के बाद यह मुद्दा एक राजनीतिक मुद्दा बना। बी.जे.पी. एवं बी.जे.डी. ने इसे डेवलपमेण्ट प्रोजेक्ट बताते हुए इसका समर्थन किया। कांग्रेस ने फायरिंग का विरोध तो किया परंतु कहा कि टाटा का प्रोजेक्ट लगे परंतु प्रभावित लोगों के पुनर्वास तथा कल्याणकारी कार्यों के बाद। सोनिया गांधी, शिबु सोरेन एवं मेधा पाटकर जैसे लोगों ने क्षेत्र का दौरा किया। फायरिंग के बाद सी.पी.आई. (एम.एल.) ने आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाना शुरू किया। इस आंदोलन में सी.पी.आई. (माओवादी) के लोग भी शामिल हैं। पहले वे आदिवासियों के कल्याण की मांग कर रहे थे परंतु अब वे टाटा फैक्ट्री/प्रोजेक्ट को रद्द करने की मांग कर रहे हैं। पहले से कार्यरत कंपनियों को बंद करने की मांग वे नहीं कर रहे हैं।

फायरिंग के बाद आदिवासी विकास मंच आगे चल कर बंट गया। सत्ताधारी बी.जे.डी. ने पहल करके 'सुकिण्डा आंचलिक आदिवासी विकास मंच' बनाया तथा टाटा के साथ मिलकर काम करने लगे।

इनका दावा है कि क्षेत्र के 65 प्रतिशत आदिवासी इनके साथ हैं। पहले से चले आ रहे आदिवासी विकास मंच से एक्शन एड ने अपने आपको अलग कर लिया तथा इसमें कांग्रेस का वर्चस्व कायम है। इन दोनों मंचों पर दो ऐसी राजनीतिक पार्टियों का वर्चस्व है जो टाटा कंपनी को बनाये रखने की हिमायती हैं। ये दल कंपनी में अपने लोगों को नौकरी तथा ठेके दिलाने के लिए प्रयासरत हैं। कंपनी के समर्थकों, ठेकेदारों तथा दलालों पर हमले तेज़ हुए हैं जिसका ठीकरा सरकार माओवादियों के सिर पर फोड़ती रहती है। आंदोलनकारियों को माओवादी घोषित करके उनका दमन तथा उत्पीड़न जारी है। इन सारी हालात में विस्थापन जन मंच, सुकिण्डा आंदोलन को आगे बढ़ाने तथा मज़बूत करने में लगा है। इस बीच कंपनी आदिवासियों को रिझाने तथा लालच देने में लगी है। उन्होंने आदिवासियों के लिए घर बनाये हैं तथा कहा है कि इन घरों में आदिवासी रहेंगे उन्हें 6 माह तक पानी, खाना, बिजली कंपनी मुफ्त में उपलब्ध करायेगी। आदिवासियों के लिए मेगा आई कैम्प तथा स्वास्थ्य शिविर भी कंपनी लगाती रहती है।

टाटा कंपनी का काम रूका पड़ा है हालांकि उनका माइनिंग का कार्य चल रहा है। कंपनी के विरूद्ध आज भी आंदोलन अलग अलग रूपों में जारी है। इस आंदोलन की खासियत के बारे में लोक शक्ति अभियान के प्रफुल्ल सामंत रे एवं पोस्को प्रतिरोध संग्राम समिति के प्रशांत पैकरा का मत है कि यहां पर आदिवासी बड़े ही लोकतांत्रिक तरीके से आंदोलन के संदर्भ में फैसले लेते हैं। इस आंदोलन में माओवादी, माओवादी (जनशक्ति), सी.पी.आई.(एम.एल.) न्यू डेमोक्रेसी प्रमुख ताकत के रूप में है। सी.पी.आई.(एम.एल.) न्यू डेमोक्रेसी का प्रभाव अधिक हैं तथा वह नेतृत्वकारी भूमिका में हैं हालांकि आर.के. सड़ंगी की मृत्यु के बाद इसमें कमज़ोरी आयी है।

उड़ीसा में आज की तारीख में पोस्को विरोधी आंदोलन एक अहम आंदोलन है तथा सरकारी दमन, पोस्को कंपनी की गुण्डावाहिनी एवं कंपनी के दलालों के साझे हमलों का सामना कर रहा है। अभी हाल ही में पोस्को प्रतिरोध संग्राम समिति के अगुआ कामरेड अभय साहू

को 12 अक्टूबर 2008 को दो साथियों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया है और 30 से ज़्यादा मुकदमों का आरोपी बताते हुए न्यायिक अभिरक्षा में जेल भेज दिया गया है।

13 अक्टूबर को कानून व्यवस्था ठीक ठाक रखने के लिए इलाके में अतिरिक्त पुलिस बल तैनात कर दी गयी। पोस्को प्रतिरोध संग्राम समिति ने इस गिरफ्तारी के विरोध में संघर्ष का ऐलान किया – 17 अक्टूबर को लगभग 5 हज़ार लोगों ने रैली में शिरकत की। सी.पी.आई. ने तीन दिन तक राज्य व्यापी विरोध प्रदर्शनों का आयोजन किया फिर 20 अक्टूबर को भुवनेश्वर में संयुक्त रूप से धरना आयोजित किया गया, 24 अक्टूबर को गांधी पीस फाउंडेशन, नयी दिल्ली के सभागार में पोस्को विरोधी आंदोलन के साथ एकजुटता, शांतिपूर्ण प्रतिरोध आंदोलन के ऊपर राज्य नियोजित उत्पीड़न के विरोध तथा पी.पी.एस.एस. के नेता कामरेड अभय साहू की तत्काल रिहाई के लिए कनवेंशन हुआ जिसमें सी.पी.आई. के महासचिव कामरेड ए.बी.बर्द्धन, बी.डी.शर्मा, मनोरंजन मोहंती, सुधीर पटनायक, अशोक अग्रवाल, ऊषा रामनाथन के साथ ही साथ पी.पी.एस.एस. के वरिष्ठ साथी प्रशांत पैकरा भी मौजूद थे।

पी.पी.एस.एस. के साथी प्रशांत पैकरा ने बताया कि सरकारी दमन का यह हाल है कि 600 लोगों के ऊपर 130 मामले दर्ज कराये गये हैं, अकेले अभय साहू के ऊपर 30 मामले दर्ज हैं और पुलिस का तो यहां तक कहना है कि उनके ऊपर 75 मामले हैं, 29 नवंबर 07 को धरना दे रहे आंदोलनकारियों पर बम फेंका गया – साइकिलों–मोटरसाइकिलों को जलाया गया – यह सब कंपनी के गुण्डे कर रहे थे और पुलिस मूक दर्शक बनी खड़ी थी, गांवों में पुलिस ने घुसकर स्कूलों को अपनी छावनी बना लिया (दिसंबर 2007), 20 जून 2008 को कार्यकर्ताओं पर बम से हमला किया गया जिसमें डूला मण्डल मारे गये। इन सारे हमलों को कंपनी की गुण्डावाहिनी ने अंजाम दिया तथा उन्हें पुलिस का पूरा समर्थन प्राप्त था। पैकरा का कहना है कि फिर भी आंदोलनकारियों के हौसले बुलंद हैं। डूला मण्डल की तेहरवीं में 4000 लोग इकट्ठा हुए,

वामपंथी नेता भी आये, मण्डल की मूर्ति लगायी गयी, मण्डल की पत्नी सविता एवं उनके तीन बच्चों की जिम्मेदारी पी.पी.एस.एस. निभा रहा है।

उड़ीसा के सांप्रदायिक उन्माद को काबू करने में असहाय बनीं उड़ीसा की बी.जे.ड़ी.–बी.जे.पी. सरकार एक लोकतांत्रिक जन आंदोलन के अगुआ को गिरफ्तार करके अपने महाप्रभुओं को प्रसन्न करने में कामयाब रही है तथा बुशवादी, मोदीवादी एवं मनमोहनी विकास के पथ पर अग्रसर होने को बेताब है। इसीलिए बहुराष्ट्रीय कंपनियों के साथ उड़ीसा सरकार 45 एम.ओ.यू. पर अभी तक हस्ताक्षर कर चुकी है।

देशी विदेशी 120 कंपनियों के ऑफर को नकारते हुए दक्षिण कोरिया की पोहांग स्टील कंपनी (पोस्को) के साथ उड़ीसा सरकार ने जून 2005 में जिस मेमोरेण्डम ऑफ अण्डरस्टैडिंग पर हस्ताक्षर किये हैं, उस प्रोजेक्ट में 51000 करोड़ रूपये का निवेश पोस्को कंपनी करेगी। भारत में अभी तक का यह सबसे बड़ा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश होगा। इस प्रोजेक्ट के अंतर्गत 4004 एकड़ में स्टील प्लांट, 2000 एकड़ में टाउनशिप, 13000 एकड़ में माइनिंग, भुवनेश्वर शहर में 25 एकड़ में कंपनी का कार्यालय, महानदी नदी से लगभग 15000 करोड़ लीटर पानी लेने की व्यवस्था, कैपटिव कोल माइंस (मात्रा अज्ञात), पारादीप बंदरगाह प्रस्तावित है। रेलवे, रोड आदि में भी हज़ारों एकड़ ज़मीन उपयोग में लायी जायेगी।

कंपनी के पक्ष में माहौल बनाने के लिए सरकार एवं कंपनी का दावा है कि पोस्को कंपनी के इस प्रोजेक्ट से लगभग 13000 लोगों को सीधे तौर पर और 35000 लोगों को अन्य तरीकों से रोज़गार मिलेगा। इस तरह के पिछले दौर के दावों की असलियत से लोग अच्छी तरह से वाकिफ हैं।

इस प्रोजेक्ट के केवल स्टील प्लांट से तीन पंचायतों – धिंकिया, नुआगांव एवं गोविंदपुर के 11 गांव विस्थापित होंगे, जिससे सीधे तौर पर लगभग 4000 परिवारों की 30000 आबादी चपेट में आयेगी।

जटाधारी पर प्रस्तावित पोर्ट से लगभग 20,000 लोग विस्थापित होंगे। सुंदरगढ़ एवं क्योंझर की सीमा पर स्थित 8 पंचायतों के लगभग 50 गांवों जो खण्डधार पहाड़ियों के 10 किमी की सीमा में स्थित हैं इस प्रोजेक्ट की माइनिंग जो 6000 हेक्टेयर में होगी से प्रभावित होंगे। जिसमें तालबहाली, कुलीफोस, फुलजर, हलदी कुदाई, सेसकेकला, भोतुडा, खुटेंगा और कोइडा पंचायतें शामिल हैं। कटक के जोबरा महानदी बैराज से कंपनी पानी लेगी जिससे पीने के पानी के संकट से जूझ रहे कटक तथा भुवनेश्वर शहरों में पानी का संकट और गहरायेगा साथ ही साथ जगतसिंहपुर, केन्द्रपाड़ा, जसपुर, पुरी जिलों में सिंचाई के पानी का अभाव हो जायेगा। जटाधारी मुहाने पर प्रस्तावित पोर्ट से नदी का प्रवाह बाधित होगा, नदी में सिल्ट इकट्ठा होगा, जल जमाव होगा, बाढ़ के खतरे बढ़ जायेंगे, तटीय क्षेत्रों के वन नष्ट हो जायेंगे जिससे समुद्री साइक्लोन के खतरे बढ़ जायेंगे, पारादीप स्थित पोर्ट नष्ट हो जायेगा।

सी. पी. आई. के महासचिव का. ए. बी. बर्द्धन का कहना है कि पोस्को प्लांट के लिए प्रस्तावित स्थान समुद्र के साइक्लोन के जद में स्थित है। एक हरा पेड़ काटने पर सजा का प्रावधान है और वहां पर 3 लाख से भी ज़्यादा हरे पेड़ नष्ट कर दिये जायेंगे। का. बर्द्धन का कहना था कि हम का. प्रकाश करात एवं अन्य लोगों के साथ राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री से मिले तथा इन भयावह स्थितियों को बताया, विशेषज्ञों– वैज्ञानिकों–पर्यावरणविदों की चिंता से उन्हें अवगत कराया परंतु सरकार ने कान में रूई डाल रखा है। वास्तव में इन कंपनियों की निगाह ज़मीन पर, महानदी के पानी पर, उपजाऊ ज़मीन पर है। पोस्को कंपनी को जितने आयरन ओर की ज़रूरत है उसका दो गुना उन्हें चाहिए, बाकि बचे भाग को वे कोरिया को निर्यात करेंगे। यह खुली लूट है और केन्द्र तथा राज्य सरकारों की इस लूट में खुली सहमति हैं इसको कौन नहीं जानता कि भारत जैसे खेतिहर समाज में कृषि योग्य भूमि को उद्योगों तथा टाउनशिप के लिए इस्तेमाल करना अत्यंत ही घातक है।

पोस्को विरोधी आंदोलन की शुरूआत एम. ओ. यू. पर हस्ताक्षर

होने (22 जून 2005) के बाद जगतसिंहपुर जिले की कुजंग ब्लाक की तीन पंचायतों ढिंकिया, नुवागाँव तथा गढ़कुजंग जो पोस्को कंपनी के प्लांट की वजह से प्रभावित होने जा रहे थे के निवासियों की तरफ से 'पोस्को क्षतिग्रस्त संघर्ष समिति' (पी.के.एस.एस.) नामक समिति बनाकर आरंभ हुआ।

पोस्को कंपनी की योजना के विरोध में आंदोलन पर विचार विमर्श के लिए वामपंथी दलों, सामाजिक संगठनों, पर्यावरणविदों, वैज्ञानिकों, पत्रकारों, अध्यापकों, मज़दूर संगठनों, अन्य राजनीतिक दलों जिसमें सी.पी.आई. महासचिव का. ए.बी.बर्द्धन तथा सी.पी.एम. महासचिव का. प्रकाश करात भी मौजूद थे, एक सम्मेलन का आयोजन किया गया। पोस्को प्रतिरोध संग्राम समिति (पी.पी.एस.एस.) का गठन किया गया। सीपीआई राज्य कमेटी के सदस्य का. अभय साहू जो ढिंकिया के पास के ही निवासी हैं ने इस संग्राम समिति की अगुवाई स्वीकार की।

आगे चलकर जब पोस्को क्षतिग्रस्त संघर्ष समिति के कुछ सदस्य कंपनी के पक्ष में कुछ बातें करने तथा प्रचार करने लगे तो पोस्को प्रतिरोध संघर्ष समिति ने आंदोलन की बागडोर अपने हाथ में ली। पोस्को विरोधी संघर्ष पी.पी. एस.एस. की अगुआई में आज भी मुस्तैदी से जारी है तथा तमाम तरह के षड्यंत्रों, हमलों का सामना करता हुआ आगे बढ़ रहा है। इस आंदोलन की अगुआई सी पी आई के हाथों में है परंतु कांग्रेस का एक खेमा तथा बी.जे.डी. के कुछ लोग भी इस आंदोलन के साथ डटे हैं। हालाँकि कांग्रेस, बी.जे.डी.का नेतृत्व तथा बहुमत कंपनी के ही साथ है। यहाँ पर माओवादी नहीं हैं।

पटना, महाड़व तथा ढिंकिया में जनता द्वारा कायम 'चेक गेट', जटाधारी मुहाने पर जमा मिट्टी को जन सहयोग से हटाकर जल जमाव समाप्त करना, पुलिस फोर्स को इलाके से बाहर करवाना, स्कूलों को फोर्स से खाली करवाना, आंदोलन को एकजुट रखना, उड़ीसा के लगभग सभी जन संघर्षों का समर्थन मिलना तथा धीरे धीरे क्षेत्र में कंपनी समर्थकों की तादाद कम करना जैसी कामयाबियाँ इस आंदोलन के साथ हैं।

तमाम कातिलाना हमलों, दलालों के षड्यंत्रों तथा आंदोलन के नेता का. अभय साहू की गिरफ्तारी के बाद भी यह संघर्ष जारी है।

यह आंदोलन प्रमुखतया 4 स्थानों पर जारी है –

- **प्लांट के खिलाफ** : ढिंकिया, नुवागांव, गढ़कुजंग पंचायतों के 8 गांवों में पी.पी.एस.एस. की अगुआई में।
- **खण्डधार माइन्स (माइनिंग के खिलाफ)** : यहां पर बी.जे.पी. तथा सी.पी.एम. ज्यादा हैं अभियान असंगठित है। बी.जे.पी. से जुड़े सरपंचों को कंपनी ने खरीद लिया है। यह पूरा पहाड़ जिसमें झरने हैं, पर्यटन स्थल हैं, 40 आदिवासी गाँव हैं उसे कंपनी को माइनिंग के लिए सरकार देने जा रही है। पी.पी.एस.एस. यहां तीसरा ग्रुप खड़ा करके आंदोलन को संगठित करने के प्रयास में लगा है।
- **जोबरा महानदी बैराज से कंपनी को पानी देने के खिलाफ संघर्ष (पानी के कब्ज़े के खिलाफ)** : इससे कटक, जगतसिंहपुर, केन्द्रपाड़ा, जसपुर, पुरी तथा भुवनेश्वर प्रभावित होंगे। कटक में जल सुरक्षा समिति का गठन जिसमें सी.पी.आई., सोशलिस्ट शामिल हैं। परंतु अन्य जिलों में अभी इस तरह की समितियाँ नहीं बन पायी हैं। अभी इन जिलों के किसानों को संगठित करना है।
- **जटाधारी बचाओ (पोर्ट के खिलाफ)** : यहां पर भी आंदोलन में सी पी आई अगुआई में है– कांग्रेस के लोग भी हैं। पोर्ट बनने से समुद्र का मुहाना बंद होगा। तीस हज़ार मछुआरे तथा किसान प्रभावित होंगे। 30 गांवों में कमेटियाँ बन गयी हैं। धरना प्रदर्शन जारी है परंतु बहुत सक्रिय प्रतिरोध–विरोध नहीं हो पा रहा है।

इसके अलावा वेदांत युनिवर्सिटी (कोणार्क–पुरी) जिसके अंतर्गत 8000 एकड़ ज़मीन अधिग्रहीत की जा रही है के विरोध में वेदांत वि.वि. विरोधी संघर्ष समिति आंदोलनरत है इसमें कांग्रेस, सी.पी.आई. तथा सी पी आई (एम.एल.) शामिल हैं। साथी वासुदेव की इस संघर्ष में महत्वपूर्ण भूमिका है। हीराकुंद में किसान आंदोलन जारी है जिसमें समाजवादी जन परिषद् के लोग शामिल हैं। मित्तल कंपनी के विरोध

में चल रहे आंदोलन में एस. यू. सी. आई., सी. पी. आई (माओवादी), तथा कुछ गांधीवादी लोग शामिल हैं। चिल्का आंदोलन आज नये तरह की चुनौतियों का सामना कर रहा है। मछुआरों की बस्ती के सामंतरापुर बालूगांव, खुर्दा के निवासी कैलाश चन्द बेहरा तथा एकता परिषद् ट्रस्ट के पूर्णा भोपा का कहना है कि प्रशासन तथा दलालों ने मिलकर चिल्का झील पर किसी न किसी बहाने कब्ज़ा जमा लेने, मछुआरों को बहिष्कृत करने, पर्यटन स्थल तथा मार्केटिंग सेंटर विकसित करने की योजना पर तेज़ी से काम करना शुरू कर दिया है। दलालों ने एक आंचलिक कमेटी बनाकर आंदोलन को बांटने की योजना बना रखी है। आज चिल्का आंदोलन में सी. पी. आई. (एम. एल.) लिबरेशन की प्रमुख भूमिका है तथा बड़ा ग्रुप है हालाँकि सी. पी. आई., बी. जे. डी. तथा कांग्रेस भी आंदोलन में शामिल है परंतु इनके ग्रुप छोटे छोटे हैं। इसी प्रकार कटक में टाटा पावर प्रोजेक्ट के विरोध में लोक शक्ति अभियान के साथी प्रफुल्ल सामंत रे आंदोलनरत हैं।

क्योंझर जिले के पटना ब्लाक में लंदन स्थित आर्सेलर मित्तल कंपनी के साथ 12 मिलियन टन उत्पादन की क्षमता वाली स्टील कंपनी की स्थापना के लिए राज्य सरकार के सहमति पत्र पर हस्ताक्षर करते ही प्रभावित होने जा रहे लोगों तथा राज्य के सामाजिक संगठनों–आंदोलनकारियों ने इसका विरोध करना प्रारंभ कर दिया है। क्योंझर जिला आयरन ओर एवं क्रोमाइट जैसे खनिज तत्वों से भरपूर है। पटना ब्लाक समतल, उपजाऊ तथा सिंचाई की सुविधा वाला भू–भाग है तथा धान का बेहतरीन उत्पादन करता है। 17 गाँव जिनमें 10 से 12 हजार की आबादी निवास करती है, कंपनी के लगने पर सीधे तौर पर विस्थापित होंगे क्योंकि कंपनी को अपना प्लांट लगाने के लिए 8 हजार एकड़ जमीन की जरूरत पड़ेगी। इस जनपद में आदिवासी–दलित आबादी 60 फीसदी है तथा यह अनुसूचित क्षेत्र है।

इसी जनपद के चम्पुआ ब्लाक में वैकल्पिक स्थान उपलब्ध हैं जहां पर आयरन ओर भी उपलब्ध है तथा भूमि सरकारी है।

कंपनी लोगों का विश्वास जीतने के लिए 'कारपोरेट सोशल रेस्पांसबिलिटीज़' (सी.एस.आर.) के मुद्दे पर कार्यशालायें आयोजित कर रही है, स्वास्थ्य शिविरों का आयोजन, कंपनी से होने वाले फायदों का प्रचार, तथा प्रशासन, शासन एवं राजनीतिज्ञों से संपर्क साधकर कंपनी की स्थापना हेतु मदद माँगने के कार्य में लगी है।

सोशलिस्ट युनिटी सेंटर आफ इण्डिया (एस.यू.सी.आई.) ने कंपनी के विरोध की शुरूआत की। लोकशक्ति अभियान भी आंदोलन से जुड़ा एवं एक साझे मंच "मित्तल हटाओ अभियान" के तहत आंदोलन जारी है। कंपनी द्वारा आयोजित स्वास्थ्य शिविरों तथा प्रशासन द्वारा आयोजित ग्राम सभाओं का स्थानीय लोग विरोध कर रहे हैं। गाँवों के लोग चावल एकत्रित कर आंदोलनकारियों तक पहुंचा रहे हैं। गाँव के लोगों ने संकल्प लिया है कि संघर्ष तब तक जारी रहेगा जब तक कि कंपनी भाग नहीं जाती।

क्योंझर नागरिक मंच जिसने मित्तल कंपनी का प्रारंभ में स्वागत तथा समर्थन किया था अब कंपनी की बदनीयती तथा लूट की मंशा को अच्छी तरह से समझ गया है।

यहाँ पर मीडिया की भूमिका मुद्दे के प्रति काफी हद तक संवेदनशील है।

उड़ीसा के जन संघर्षों में यह देखने में आता है कि यह संघर्ष उन्हीं लोगों को अपने साथ जोड़ पाये हैं जो लोग सीधे तौर पर प्रभावित होने जा रहे है। जिन योजनाओं के खिलाफ जन संघर्ष किया जा रहा है तथा जो मुद्दे उठाये जा रहे हैं उनके व्यापक प्रभाव के बारे में अवगत कराते हुए वृहत स्तर पर लोगों को जोड़ने में जन संघर्ष असफल रहे हैं। ये मुद्दा आधारित, स्थानीय हैं और कभी–कभी लगता है कि कुछ मामलों में यह व्यक्तिवादी रूझान होने के नाते "निजीकृत" न हो जायें। अभियानों में आये कई ऐसे प्रभावशाली लोग हैं जिन्होंने "आंदोलनकारी" बने रहने के बजाय "सेवा प्रदाता" की भूमिका को ज़्यादा पसंद किया है। सुधीर पटनायक का मत है कि जन संघर्षों में मदद का स्वागत किया जाना चाहिए परंतु यह ध्यान रखना होगा कि

ज़मीनी स्तर पर कार्य गैर सरकारी संगठनों के बस की बात नहीं है।

उड़ीसा के जन संघर्षों का कोई प्रांतीय स्तर का सक्रिय व सशक्त साझा मंच न होने का परिणाम यह हैं कि राज्य के दमन और ''कारपोरेट हिंसा'' का प्रभावकारी प्रतिरोध नहीं हो पाता है और एक–एक करके सभी जन संघर्षों के ऊपर दमन जारी है।

उड़ीसा के जन संघर्ष दो ध्रुवों – 1. एंटी स्टेट (पूर्ण विरोध) 2. प्रो स्टेट (बेहतर मुआवज़ा, पुर्नवास) के बीच अपनी भूमिका तय करने में लगे हैं।

आज जन संघर्षों में सर्वमान्य अगुआ के रूप में कोई साथी उभरकर नहीं आ पा रहे हैं। हालाँकि लिंगराज, प्रफुल्ल सामंत रे जैसे कुछ लोग हैं जिनका सम्मान सभी लोग करते हैं परंतु किशन पटनायक जैसा आंदोलनकारी जिसमें लोगों को जोड़ने की क्षमता थी आज उड़ीसा में नहीं है। आज नेताओं का व्यवहार उनका चिड़चिड़ापन– आक्रोश साथियों को जोड़ने के बजाय अलग कर देता है। ये व्यवहारगत दिक्कतें भी अगुआकार साथियों के साथ हैं।

उड़ीसा में जहाँ ये सारे जन संघर्ष चल रहे हैं चाहे उनका रूप–स्वरूप, आकार–प्रकार जैसा भी हो वहीं अन्य लोकतांत्रिक आंदोलन– छात्रों–युवकों, किसानों, ट्रेड युनियनों के आंदोलन तथा भ्रष्टाचार–तानाशाही– मँहगाई–बेरोज़गारी के विरोध में लोकप्रिय आंदोलनों के अभाव में उड़ीसा के ये जन संघर्ष कहीं और से शक्ति एवं समर्थन न पाने की वजह से एक ही स्थान पर कदम ताल कर रहे हैं और लगता है कि सत्ता तथा कंपनियाँ मामलों को लंबे समय तक लटका कर आंदोलनों को निराशा की तरफ ढकेलने में लगी हैं।

जन संघर्ष आज किसी न किसी रूप में जारी हैं। चूँकि जन संघर्ष सरकारी विभागों या स्थापित संस्थाओं की तरह 'कैलेण्डर बेस्ड' नहीं होते हैं और न ही उनका कोई रेडीमेड फार्मूला होता है, बहुत सी बातें पूर्व निर्धारित नहीं होती हैं अतएव कुछ लोगों को लग सकता है कि पोस्को विरोधी, वेदांत कंपनी विरोधी, काशीपुर तथा कलिंगनगर

के जुझारू संघर्षों में ठहराव आ गया है तथा कुछ हो नहीं रहा है। परंतु हकीकत इसके विपरीत है। सत्ता, सरकार, कंपनियों एवं पूँजी की तमाम चालों के बावजूद भी ये संघर्ष की राह पर हैं तथा अपनी मंज़िल की तरफ बढ़ रहे हैं साथ ही साथ इनके समर्थकों, हमदर्दों तथा मददगारों की तादाद बढ़ती जा रही है।

उड़ीसा के जन संघर्षों के सबक

उड़ीसा के जन संघर्षों के अतीत के अनुभव आज के जन संघर्षों के लिए एक महत्वपूर्ण सबक हो सकते हैं उड़ीसा के जन संघर्षों के प्रमुख अनुभव निम्नवत हैं –

- यदि आंदोलन की अगुआई उच्च जाति, सामंत, संपन्न किसान और बाहरी लोगों के हाथ में रही है तो वे आंदोलन असफल रहे हैं या समझौता करके वापस ले लिये जाते रहे हैं जैसे रेंगालीडैम, हीराकुद और राउरकेला के आंदोलन।

- वही आंदोलन सफल होते रहे हैं जिनका नेतृत्व स्थानीय लोगों, वामपंथियों–क्रांतिकारियों–सोशलिस्टों के हाथ में रहा है तथा स्थानीय लोगों विशेष तौर पर महिलाओं की व्यापक भागीदारी रही है जैसे गंद मारदन, चिल्का आदि के आंदोलन। इस संदर्भ में चिल्का आंदोलन एक सटीक उदाहरण है। तीन जिलों में विस्तार लिए इस आंदोलन में बांके बिहारी दास, चितरंजन तथा मछुआरे समुदाय के स्थानीय नेता लाडू बाबा की निभाई गयी महत्वपूर्ण भूमिका स्थानीय समुदाय की व्यापक भागीदारी, महिलाओं का योगदान वे कारक थे जिन्होंने इस संघर्ष को जीत दिलाई थी। आज भी काशीपुर, कलिंगनगर, पोस्को विरोधी आंदोलन तथा लांजीगढ़ के आंदोलनों में वामपंथियों की ही मुख्य भूमिका है तथा स्थानीय लोगों की व्यापक भागीदारी तथा नेतृत्व है।

- जैसे ही आंदोलन आरंभ होता है निहित स्वार्थी तत्व भी आंदोलन में पीछे के दरवाजे से शामिल होने का प्रयास करते हैं परंतु स्थानीय लोग उनपर शक करते हैं तथा आंदोलन में उनकी भागीदारी पर रोक लगा देते हैं। वर्ष 1990 के बाद से किसी भी बाहरी व्यक्ति को किसी भी आंदोलन में नेतृत्व नहीं करने दिया गया।

- प्रतीकात्मक विरोध होने पर भी पब्लिक सेक्टर की प्रस्तावित योजनाओं को निरस्त कर दिया जाता है (बालको, बालयापदा,

चिल्का का ज्वाइंट सेक्टर – टाटा + सरकार आदि) लेकिन प्राइवेट सेक्टर के मामले में ऐसा नहीं होता।

- प्राइवेट सेक्टर में भी बहुराष्ट्रीय कंपनियों का ज़्यादा तीखा विरोध होता है। भारतीय कंपनियाँ दिक्कतों का सामना करने तथा उसे सुलझाने में ज़्यादा कारगर रही हैं।

- एन.सी.सी.डी. भुवनेश्वर के प्रो. के.सी.सामल का कहना है कि जन संघर्षों में दाता संस्थायें घुसपैठ करके अपने देश की कंपनियों के हित में तथा दूसरे देश की कंपनियों के विरोध में भी अपनी भूमिका अदा करती हैं जैसे यू.एस.ए. की बहुराष्ट्रीय कंपनियों के विरोध में चलने वाले आंदोलनों को यूरोपियन यूनियन से सहायता प्राप्त दाता संस्थायें जैसे एक्शन एड मदद करती हैं। इसी प्रकार टाटा कंपनी के प्रोजेक्ट के विरोध में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के द्वारा सहायता प्राप्त एन.जी.ओ. कार्यरत हैं। प्रो .सामल का मत है कि राउरकेला के आसपास कार्यरत जर्मन चर्च ने अपने प्रभाव का इस्तेमाल करते हुए राउरकेला क्षेत्र में लगने वाले जर्मनी के प्लांट का विरोध न करने के लिए आदिवासियों को सहमत कर लिया था।

- कोई भी मुख्य राजनीतिक दल इस तरह की परियोजनाओं के विरोध में खुलकर कभी भी जन संघर्षों के साथ नहीं आया है। पोस्को विरोधी आंदोलन में सी पी आई के का. ए.बी.बर्द्धन इसका अपवाद हैं। हालाँकि दलों की स्थानीय इकाइयाँ कभी कभार शामिल रही हैं।

- जन संघर्षों का राजनीतिक तथा चुनावी प्रभाव भी पड़ता रहा है बालको आंदोलन के नेता भवानी होता जो एम.पी. का चुनाव जीते तथा गोपालपुर आंदोलन के नारायन रेड्डी एम.एल.ए. का चुनाव जीते।

- जन संघर्षों में दाता संस्थाओं की भूमिका अत्यंत ही घातक तथा नकारात्मक रहती है उनका पूरा ध्यान उनके अपने हितों पर रहता है। प्रो. सामल का कहना था कि सिंगुर में चल रहा आंदोलन बजाज कंपनी तथा यू.एस.ए. फण्डेड एन.जी.ओ. द्वारा फण्डेड था क्योंकि इस आंदोलन के जरिए वे सी.पी.आई. (एम) से परमाणु

समझौते के मामले पर सौदेबाज़ी करना चाहते थे। इसलिए यह समझना भी ज़रूरी है कि दाता संस्थाओं का अपना राजनीतिक एजेण्डा भी होता है और अपने 'डोनर्स' के हितों के लिए मार्ग प्रशस्त करना उनका सर्वोच्च कर्तव्य।

- समाज में जारी सत्ता समीकरणों को बरकरार रखते हुए सरकारों ने हर स्तर पर कार्य किया है यहाँ तक कि जहाँ पर सवर्ण या उच्च जातियों के लोग विस्थापित हुए वहाँ पर उनके पुनर्वास को कायदे से किया गया (नालको के कारण विस्थापित लोग – अंगुल में) परंतु आदिवासियों के साथ ऐसा नहीं किया गया (दामनजोरी–कोराकुट)।

उड़ीसा के जन संघर्षों के समक्ष चुनौतियाँ

जिस वक्त फोर्ड फाउण्डेशन की पहल पर उड़ीसा में भी सामाजिक क्षेत्र में प्रोफेशनलिज्म को स्थापित किया जा रहा था उसी दौर में विकास की प्रक्रिया पर स्व. मनमोहन चौधरी सवाल खड़े कर रहे थे। किशन पटनायक, चितरंजन, लिंगराज, नारायण रेड्डी, गणनाथ पात्रो, लाडू बाबा जैसे तमाम आंदोलनकारी जन संघर्षों में लगे हुए थे। पर्यावरणविद बाँके बिहारी दास अपनी राय व्यक्त कर रहे थे कि राजनैतिक हस्तक्षेप के बगैर हम हालात में परिवर्तन नहीं कर सकते। इसी दौर में फोर्ड फाउण्डेशन की पहल पर प्रोफेशनल्स की एक और गोलबंदी हो रही थी। यह लोग यूथ हास्टल मूवमेंट तथा कम्युनिटी एड एब्राड के साथ कार्यरत थे। आगे चलकर इनकी गोलबंदी में और लोग भी शामिल हुए। दाता संस्थाओं से निकटता तथा प्रोफेशनल कौशल ने इन्हें ऐसी स्थिति प्रदान की थी कि फण्ड एवं प्रोजेक्ट की इच्छुक संस्थायें इनके संपर्क में आयीं जिनको वे लगातार अपने रंग – ढंग में रंगते चले गये। यह वही दौर था जब उड़ीसा के कई भागों में छात्र–युवा संघर्षवाहिनी, समाजवादी जन परिषद् अपना सांगठनिक आधार मज़बूत कर चुके थे। तीनों पटनायक – बीजू, जानकी बल्लभ तथा किशन बड़े नेता के रूप में उभरकर आ चुके थे। कहने का तात्पर्य यह है कि संघर्षों में, बदलाव की प्रक्रियाओं में व्यवस्था समर्थक, सुधारवादी तथा परिवर्तनकारी धारायें हमेशा रही हैं। आज भी ये धारायें उड़ीसा के जन संघर्षों में सकारात्मक या नकारात्मक भूमिकायें निभा रही हैं। अतएव आज मूल सवाल जन संघर्षों के समक्ष यह है कि परिवर्तनकारी धारा को सशक्त कैसे किया जाय? साथ ही परिवर्तन की व्याख्या पर आपसी सहमति कैसे बने?

- 20 जुलाई 2008 को भवानी पटना में लांजीगढ़ आंदोलन से सरोकार रखने वाले कालाहाण्डी सचेतन नागरिक मंच, नियामगिरि सुरक्षा समिति तथा भूमि सुरक्षा समिति के

साथियों ने इस मुद्दे पर दिनभर मंथन करने के बाद अपनी राय बनायी कि ''आंदोलन केवल विरोध–प्रतिरोध नहीं है बल्कि सकारात्मक मूल मुद्दे किसी आंदोलन का निर्माण करते हैं। आंदोलन केवल वेदांत जैसी कंपनी के विरोध तक ही सीमित न हो बल्कि पूर्ण परिवर्तन तथा व्यवस्था परिवर्तन के लिए हो।'' अन्य जन संघर्ष भी इस समझदारी से मतभेद नहीं रखते परंतु जन संघर्षों के सामने यह चुनौती है कि उपरोक्त समझदारी से लोगों तथा आंदोलनकारियों को सहमत कैसे किया जाय? 'एडजेस्टमेण्ट' की बहु प्रचारित नीति के विरूद्ध लोगों में 'संघर्ष ही एकमात्र विकल्प है' की समझ कैसे स्थापित की जाय?

दाता संस्थाओं, प्रमुख गैर सरकारी संगठनों, प्रमुख राजनीतिक दलों, निहित स्वार्थी तत्वों, धोखाधड़ी और भुनाने के इरादे से आंदोलनों में घुसे लोगों के षड्यंत्रों तथा आंदोलन को तोड़ने के कारनामों से निपटना भी एक चुनौती है। यदि हम देखें तो पायेंगे कि कलिंगनगर में आदिवासी विकास मंच को दो भागों में बांटने के लिए सुकिण्डा आंचलिक आदिवासी विकास मंच अलग से बनाया गया, इसी तरह चिल्का में भी बनी कमेटी को बांटकर एक अलग से आंचलिक कमेटी बनायी गयी, पोस्को क्षतिग्रस्त संघर्ष समिति को तोड़ा गया, लांजीगढ़ में भी संघर्षरत नियामगिरि सुरक्षा समिति को संबल देने के बजाय इसके समानान्तर 'ग्रीन कालाहाण्डी' को खड़ा किया गया।

- उड़ीसा में चल रहे जन संघर्षों का आपस में कोई कारगर समन्वयन नहीं हो पा रहा है। जो एक बड़ी चुनौती है। हालाँकि आपसी समन्वयन तथा साझी मुहिम के प्रयास किये जाते रहे है। पी पी एस एस के साथी प्रशांत पैकरा ने बताया कि उड़ीसा के प्रमुख जन संघर्षों के साथियों को लेकर एक ज्वाइंट कमेटी बनायी गयी है जिसमें –

प्रफुल्ल सामंत रे	(लोक शक्ति अभियान)
रवि जरिका	(विस्थापन जन मंच, सुकिण्डा, कलिंगनगर)
वासुदेव	(वेदांत विश्व विद्यालय विरोधी संघर्ष समिति)
लिगराज आज़ाद	(नियामगिरि आंदोलन – लांजीगढ़)
भगवान माझी/	
देवरंजन सरोज	(काशीपुर आंदोलन)
अनन्त/लिंगराज	(पानी आंदोलन – संबलपुर)
प्रशांत पैकरा	(पी. पी. एस. एस.)
गणनाथ पात्रा	(सी. पी. आई. –एम. एल.)
राधाकांत सेठी	(सी. पी. आई. – एम. एल. – लिबरेशन)
भालचंद सड़ंगी	(सी. पी. आई. – एम.एल. – न्यू डेमोक्रेसी)
शिबराम	(बस्ती सुरक्षा मंच, भुवनेश्वर) – सी. पी. आई. (एम. एल. रेड फ्लैग)
नटवर सड़ंगी	(आर. के. सड़ंगी के स्थान पर)

शामिल हैं। इसके संयोजक का. आर. के. सड़ंगी थे परंतु मार्च 2008 में उनके देहांत के बाद यह कमेटी थोड़ा शिथिल पड़ गयी है।

कटक के साथी निकुंज ने बताया कि उड़ीसा बचाओ आंदोलन विभिन्न आंदोलनों के सपोर्ट के लिए बनाया गया है। इसमें पी. पी. एस. एस., उड़ीसा जन अधिकार मोर्चा तथा भारत जन आंदोलन द्वारा चलाये जा रहे सभी जन आंदोलनों में हमारा 'सपोर्टिव रोल' है। इसे भी हम सीमित साझी मुहिम के प्रयास के रूप में स्वीकार कर सकते हैं।

इसी प्रकार का प्रयास पी. पी. एस. एस. की स्थापना के समय हुए संयुक्त सम्मेलन के द्वारा किया गया था। समदृष्टि के संपादक

साथी सुधीर पटनायक का कहना है कि नवंबर 1999 में साझी पहल की शुरूआत की गयी लेकिन 16 दिसंबर 2000 में जब आंदोलनकारियों पर पुलिस फायरिंग हुई सबको सूचना दी गयी परंतु कोई नहीं आया। अतएव साझी पहल धरी रह गयी।

लेकिन इन प्रयासों को भले ही निरंतरता या स्थायी सांगठनिक स्वरूप न मिल पाया हो परंतु काशीपुर फायरिंग, कलिंगनगर फायरिंग, वेदांत कंपनी के संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले जैसे प्रमुख मौकों पर अधिकांश आंदोलनकारी एकजुट होते रहे हैं। पी पी एस एस के नेता अभय साहू के गिरफ्तारी के विरोध में एकता बढ़ी है।

कई साथियों का यह मानना है कि प्रमुख आंदोलनों के साथी सरकारी दमन से बचने के लिए अण्डर ग्राउण्ड रहने को बाध्य हैं अतएव यह साझा समन्वय बार बार बाधित होता रहता है। कई आंदोलनकारियों का कहना है कि साथी लिंगराज प्रफुल्ल सामंत रे जिनकी उड़ीसा के जन संघर्षों में प्रमुख भूमिका रही है इस साझी मुहिम के मुख्य कर्णधार बन सकते हैं।

अतएव जन संघर्षों का आपसी समन्वय कैसे किया जाय इस पर गंभीरता के साथ पहल करने की जिम्मेदारी तथा साझी मुहिम करने की चुनौती जन संघर्षों के समक्ष है। निश्चित तौर पर पुराने आंदोलनकारियों तथा काशीपुर, कलिंगनगर, पोस्को विरोधी एवं लांजीगढ़ आंदोलनों को इस जिम्मेदारी का निर्वाह करना चाहिए– पहल करनी चाहिए।

साझी पहल या संयुक्त समन्वयन के लिए पहली शर्त यह बन जाती है कि जन संघर्षों की एक साझी सुस्पष्ट रणनीति हो जिससे संघर्षों को आगे बढ़ाया जाय एवं एक विकल्प भी सामने रखा जाय। इस साझी रणनीति एवं विकल्प पर एक आम सहमति कायम करना एक बड़ी चुनौती है। उड़ीसा के जन संघर्षों में उनकी स्वयं अपने अपने आंदोलन की कोई स्पष्ट दूरगामी रणनीति नहीं है अतएव साझी रणनीति का निरूपण आसान कार्य नहीं है। इसके जायज कारण भी हैं–

- सभी आंदोलनों का नेतृत्व एक जैसा नहीं है, उनकी सोच एवं नजरिये में भी भिन्नता है।
- हर आंदोलन की अपनी स्थितियां/परिस्थितियां तथा शामिल हितग्राही समूह अलग–अलग हैं।
- अधिकांश जन संघर्ष तात्कालिक मामलों पर ही केन्द्रित हैं तथा उनके पास पूर्व अनुभव भी नहीं है।
- लोगों के पास स्थानीय अनुभव ही हैं। वे स्थानीय संघर्ष पर ही विचार–विमर्श, चर्चा–परिचर्चा तथा योजनायें बनाते हैं।
- जन आंदोलन स्वतः स्फूर्त हैं तथा अपने अनुभवों से सबक लेकर आगे बढ़ते रहे हैं। अतएव अन्य आंदोलनों के अनुभवों से सीखने–सबक लेने की इच्छा उनमें कम ही दिखती है।
- ज्ञान–जानकारी तथा कौशल में असमानता/भिन्नता के कारण स्थानीय नेतृत्व बाहरी लोगों के प्रति सशंकित रहते हैं उसमें यह भय भी समाया रहता है कि बड़ी जतन से जिस आंदोलन को हमने खड़ा किया है वह कहीं दूसरों के द्वारा 'हाइजैक' न कर लिया जाय।

- स्थानीय नेतृत्व के मन में यह भी समाया हुआ है कि यदि साझे आंदोलन खड़े होते हैं या आंदोलन को व्यापकता मिलती है तो हम इसे संभाल पायेंगे कि नहीं? नेतृत्व कहीं दूसरों के हाथ में न चला जाय, अपना स्थानीय आंदोलन छोड़ बाहर जायेंगे तो कहीं यह आंदोलन कमजोर न हो जाय।
- राजनीतिक दलों, दाता संस्थाओं–ग़ैरसरकारी संगठनों, स्थानीय दलों के नेताओं तथा निहित स्वार्थी तत्वों द्वारा आंदोलन में बनाये गये खेमे तथा इन खेमों के अपने–अपने व्यापक हित भी साझी पहल को बाधित करते रहते हैं।
- अहम, व्यक्तिगत हित–स्वार्थ, व्यक्तिगत पसंद–नापसंद के सवाल, आपस के भूतकाल के कटु अनुभव, बुद्धिजीवी बनाम एक्टिविस्ट के झगड़े, समाज में जारी सत्ता समीकरणों के कारण उत्पन्न विभिन्न मतभेद आदि एकजुटता में बाधक हैं।

- इन मतभेदों तथा गलतफहमियों, मन–मुटावों का कारण मुद्दों तथा पहल पर अस्पष्टता है। स्पष्ट दृष्टि तथा दिशा न होने के कारण, व्यापक सोच न होने के कारण साझे अभियान संभव नहीं हो पा रहे हैं जबकि आंदोलनों के प्रति प्रतिबद्धता और समर्पण का स्तर उच्चकोटि का है।

- सभी संघर्षों की अपनी–अपनी योजनायें हैं परंतु रणनीति नहीं है। उड़ीसा के संघर्षों से जुड़े साथियों का मत है कि जन संघर्षों पर कोई बाहरी रणनीति प्रत्यारोपित नहीं की जा सकती है। उन्हीं संघर्षों से अनुभव अर्जित करके अपने आप एक स्पष्ट रणनीति उभरकर आयेगी।

- जन संघर्षों से जुड़े अगुआकारों की आपस में साझे अभियान पर संभवतया चर्चा नहीं हो पाती है। साझे कार्यक्रमों (धरना, रैली, सम्मेलन) तक ही साझी पहल सीमित रही है। इसीलिए साझी पहल के महत्व, जरूरत तथा साझे पहल के लिए साझी रणनीति का मामला पीछे छूट गया है। 'न्यूनतम सहमति और अधिकतम योगदान' की पहल नहीं हो पायी है।

यह बात सच है कि जन संघर्षों में शामिल लोगों में सैद्धान्तिक मतभेद है परन्तु यह मामला मतभेदों से ज्यादा मनभेदों का प्रतीत होता है। एक जैसी स्थितियों से सारे जन संघर्ष दो–चार हो रहे हैं, प्रभावित लोगों का सामाजिक तथा वर्गीय चरित्र भी कमोवेश एक जैसा है, सत्ता, सरकार एवं कंपनियों का चरित्र भी एक है तथा आंदोलनकारी लोगों में एक जबर्दस्त साम्यता है कि सभी के सभी लोग मौजूदा हालात को बदलने के लिए एकमत हैं फिर एकजुट साझी पहल तथा रणनीति क्यों नहीं बन पा रही है– यह एक गंभीर सवाल है।

उड़ीसा के जन संघर्षों में वामपंथी एवं सोशलिस्ट विचारधारा के तमाम राजनीतिक दलों की उपस्थिति, बुद्धिजीवियों की भागेदारी, संघर्षवाहिनी–समाजवादी जन परिषद, गांधीवादियों, सर्वोदयी विचारधारा से जुड़े लोगों की उपस्थिति के बावजूद भी यदि जन संघर्षों का राजनीतिकरण नहीं हो पा रहा है, राजनैतिक हस्तक्षेप की

पहल नहीं हो पा रही है तो निश्चित तौर पर यह गंभीर मामला है। संभवतया इसी नाते जन संघर्ष स्थानीयता से बाहर नहीं निकल पा रहे हैं और सत्ता को गंभीर चुनौती नहीं दे पा रहे हैं। जैसा कि प्रशांत पैकरा तथा प्रफुल्ल सामंत रे का कहना है कि "साम्राज्यवाद, साम्प्रदायिकता तथा विकास की मौजूदा प्रक्रिया के विरोध में जो भी हैं उनसे हम (जन संघर्षों में) मदद लेते हैं"। केवल मदद लेने से सरोकार रखने से काम नहीं चलेगा, इन ताकतों को एकजुट करने की, साझी पहल तथा साझी रणनीति बनाने और राजनैतिक हस्तक्षेप करने की जिम्मेदारी भी अपने कंधों पर उड़ीसा के जन संघर्षों को लेनी होगी।

आज जबकि जनआंदोलनों के प्रति सरकार का रवैया दमनकारी तथा हिंसक हो गया है, आंदोलन के सारे लोकतांत्रिक तरीके विफल से होते दिख रहे हैं, सभी लोकतांत्रिक संस्थानों जिसमें संसद–विधान सभायें एवं न्यायालय भी शामिल हैं या तो हाशिये पर डाल दिये गये हैं या उनका इस्तेमाल जन विरोधी कार्यों के लिए किया जा रहा है, सरकारें बड़ी निर्लज्जता के साथ पूंजी की चाकरी में निमग्न हैं तथा प्रमुख राजनीतिक दल जनता के प्रति संवेदनहीन हो गये हैं– ऐसे में जन संघर्षों के समक्ष आंदोलन के नये तौर–तरीकों पर गहन विचार करके समुचित निर्णय लेना भी एक महत्वपूर्ण काम है।

और अंत में – विकास के तमाम तामझाम, उद्योग, कंपनी, कारखाने, माइनिंग साध्य हैं या साधन? यदि ये साधन हैं तो जो साध्य है उसका रूप–स्वरूप क्या हो? अर्थात जिस समाज के विकास या सम्पन्नता का ये साधन हैं उसका आदर्श रूप–स्वरूप क्या है? क्या उस आदर्श समाज के निर्माण में ये मददगार साबित हो रहे हैं? जिस सुख, आनंद तथा सम्पन्नता की और विकास तथा प्रगति की बात की जा रही है वह क्या है? किसके लिए है? कितनों के लिए है? सम्पन्नता के द्वीप तथा विपन्नता के महासागर कैसे पैदा होते जा रहे हैं? वह कौन सी व्यवस्था, नीतियाँ तथा विधान हैं जो यह सब हो जाने देने में मददगार हैं? इनके पीछे कौन सी ताकतें हैं। इसका ज़िम्मेदार कौन है?

क्या इन सब सवालों पर आम लोगों को जागरूक किये बगैर समाज में जारी सत्ता समीकरणें को बदला जा सकता है? राजनैतिक हस्तक्षेप किया जा सकता है? यदि नहीं तो क्या इन पर पहल किये बगैर एक सशक्त जन आंदोलन खड़ा किया जा सकता है?

उड़ीसा में आज जो हो रहा है वह वैश्वीकरण अर्थात भूबाज़ारीकरण की बढ़ती गति का ही अनिवार्य परिणाम है। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया शुरू होने से पूर्व सब ठीक ठाक ही था परंतु यह सच है कि वैश्वीकरण – उदारीकरण –निजीकरण की पहिया ज्यों ज्यों गति पकड़ रही है दुनिया की व्यापक आबादी और ज्यादा बदहाल होती जा रही है।

वैश्वीकरण अपनी व्याख्या में समान एवं स्वैच्छिक भागीदारी की एक आदर्श तथा लुभावनी प्रक्रिया प्रस्तुत करता है। जबकि असमानता तथा श्रेणीबद्धता पूँजीवाद की अनिवार्य विशेषता है। पिछड़े, निर्धन, अविकसित तथा विकासशील राष्ट्रों को जब वैश्वीकरण की प्रक्रिया से जोड़ा जाता है तो उसका तात्पर्य होता है भारत जैसे देशों की पराधीनता। अतएव भारत जैसे देशों के लिए वैश्वीकरण गुलामी का पैगाम है। अमरीका, जापान, ब्रिटेन, जर्मनी जैसे देशों के लिए इसमें रोमांचक संभावनायें हो सकती हैं। लेकिन विश्व के कमज़ोर राष्ट्रों यथा भारत, बांगलादेश तथा अफ्रीका एवं लातीनी अमरीका के देशों के लिए ऐसी ही उम्मीद करना कपोल कल्पना होगी। इन देशों के लिए वैश्वीकरण स्वतंत्रता एवं प्रगति का सूचक नहीं है बल्कि यह इन राष्ट्रों पर प्रभुत्व एवं आधिपत्य के माकूल माहौल बनायेगा जिसका लाभ दुनिया के पूँजीवादी राष्ट्रों के गठबंधन को ही मिलेगा।

अतएव यह आवश्यक है कि वैश्वीकरण की अवधारणा को ही कटघरे में खड़ा किया जाय तथा उस पर से रहस्य का परदा हटा दिया जाय। अभी इसके ऊपर आदर्शों–सिद्धांतों का खोल चढ़ा हुआ है। तीसरी दुनिया के देश इसकी वास्तविकता नहीं देख पा रहे हैं।

सोवियत संघ के पराभव के बाद कायम एक ध्रुवीय दुनिया में समाजवादी दुनिया के ध्वस्त होते ही पूँजीवादी शक्तियाँ फिर से

दुनिया फतेह करने निकल पड़ीं। बाधा तो कोई थी नहीं सिर्फ आपसी गठजोड़ मज़बूत करना था। इन हालात में लूट में साझेदारी सबसे सरल एवं सुंदर तरीका था। इसी उद्देश्य से समकालीन पूँजी को सार्वभौमिक दृष्टि दी गयी। लोकतंत्र का ढोंग करने के लिए डब्लु.टी.ओ., पेटेंट कानून आदि का नाटक किया गया।

पूँजी के इस अश्वमेध यज्ञ के घोड़े पर लगाम लगाने की उम्मीद भारत जैसे देशों से थी क्योंकि भारत ने अपनी स्वाधीनता के तुरंत बाद से ही आत्म निर्भरता को अपनी आर्थिक नीति की आधारशिला माना था और देश की संप्रभुता की रक्षा को संवैधानिक प्रतिबद्धता। लेकिन आज जो हो रहा है वह एकदम उल्टा है। लाइसेंस–परमिट की विस्तृत व्यवस्था के साथ विकास का नेहरूवादी परिप्रेक्ष्य स्वार्थी बुर्जुआ और मध्यम वर्ग के लिए असहय हो रहा था। वे तो उपभोक्तावाद का रसास्वादन करने को आतुर थे। उन्हें उदारीकरण–निजीकरण में अपनी मुक्ति दिख रही थी। आज हर हाल में भारतीय बुर्जुआ वर्ग वैश्वीकरण की प्रक्रिया में बाजे–गाजे के साथ भाग लेता है हालाँकि वह इसके दूरगामी परिणामों से अनभिज्ञ है। उनका सोचना है कि वैश्वीकरण के जरिये ही उन्हें वह सब मिल सकता है जो पाश्चात्य जगत को प्राप्त है।

आज जबकि दुनिया एक ध्रुवीय हो गई है, दक्षिणपंथी रूझान बढ़ रहे हैं, ताकत का इस्तेमाल बढ़ रहा है, तर्कों पर आस्थायें भारी पड़ रही हैं, फासीवाद अपना नया अवतार ले चुका है, भोजन–पानी–दवा–किताब पूँजी के निशाने पर हैं, राष्ट्रों ने अपनी संप्रभुता खो दी है तथा दुनिया के शासक वर्ग ने अपना साझा क्लब बना लिया है, विकास के सपने ज्यों ज्यों साकार हो रहे हैं दुनिया की व्यापक आबादी ज़िंदा रहने तक को मोहताज हो रही है – ऐसे में सत्ता (राष्ट्र राज्य) से किसी भले की उम्मीद एक गंभीर गलती होगी। आज साम्राज्यवाद से लड़ना अपने ही देश के प्रभुवर्ग से लड़ना है। यह हमारे देश की शासक जमातें हैं जिन्होंने भूमण्डलीय पूँजी को दावत दी है, गुलामी के दस्तावेज़ों पर हस्ताक्षर किये हैं और देश व मेहनतकश जनता की तबाही पर चल पड़ी हैं।

हमारे तमाम जन संघर्षों–आंदोलनों का प्रेरणा स्रोत स्वाधीनता संग्राम रहा है। आज़ादी का आंदोलन विश्व पूँजीवाद (उपनिवेशवाद) स्ट्रक्चरल लॉजिक (संरचनागत तर्क) के ही खिलाफ था और उसी से मुक्ति के लिए था। आज भूमंण्डलीय पूँजी का एक अलग साम्राज्यवादी दौर हैं। इसके संरचनागत तर्क से भारत की मुक्ति यहाँ की मेहनतकश जनता की ज़रूरत है और वह लड़ भी रही है। मार्क्सवादी चिंतक प्रो. रणधीर सिंह का कहना है कि– ''लोग तो लड़ेंगे ही, उन्हें लड़ने से रोका नहीं जा सकता। ये जीवन–मरण के संग्राम में संलिप्त हैं। उन्हें सही रास्ता, उचित विकल्प नहीं मिलेगा, तो गलत रास्ते से भी, वे लड़ेंगे ज़रूर।''

इस तथ्य से राष्ट्र–राज्य के नियंता, पूँजी–कम्पनी–सरकार सभी वाकिफ हैं। अतएव वे संवैधानिक प्रतिबद्धताओं–प्रावधानों की धज्जियां उड़ाते हुए– 'विश्व ग्राम', 'वसुधैव कुटुम्बकम्', 'एडजस्टमेण्ट' तथा 'विकास' जैसे लुभावने नारों का प्रयोग करके अपने हितमार्ग की प्रशस्ति हेतु नियम–कायदे–कानूनों में गुणात्मक परिवर्तन करा रहे हैं। इस तरह के लुभावने नारे 'बाजार के विस्तार' तथा 'माल की बिक्री' के लिए युद्धरत पूँजीवादी राष्ट्रों के एक खेमे (मित्र राष्ट्रों) ने द्वितीय विश्व युद्ध के समय भी लगाये थे जब उन्होंने 'लोकतन्त्र' की रक्षा के लिए पूरी दुनिया से सहयोग की अपील की थी। परंतु आज उन्हें 'बाजार के राज' तथा 'मुनाफे की गठरी' के लिए लोकतन्त्र की कतई जरूरत नहीं है। पूँजीवाद इस बात को अच्छी तरह समझता है कि उसके पास अपने स्वयं के संकटों को हल करने का कोई स्थायी–मौलिक निदान नहीं है। अतएव वह सामने आने वाले संकटों को तात्कालिक तौर पर हाथ–पैर मारकर, कोई जुगाड़ बैठाकर हल करता रहता है। आज वह जिस संकट में घिरा है उससे निकलने के लिए आम लोगों को तबाह करना उसके लिए अनिवार्य हो गया है।

अपनी तबाही के खिलाफ संघर्षरत लोगों को काबू में करने के लिए लोकतन्त्र की समाप्ति पूँजीवाद के लिए जरूरी है। इसीलिए जनसंघर्षों को कुचलने के लिए एक तरफ वे दमन–उत्पीड़न का

सहारा लेकर इसके हेतु राज्य को सक्रिय कराते हैं और दूसरी तरफ अपने क्रीतदासों की बौद्धिक प्रवंचना का प्रयोग एवं प्रचार–प्रसार कर जनसंघर्षों में असमंजस, मतभेद तथा दुविधा की स्थितियां भी खड़ी कराने में संलिप्त हैं।

इसके बावजूद भी उड़ीसा में भी जो स्थितियाँ बन रही हैं वे स्पष्ट करती हैं कि अपनी ज़मीनों, वनों, नदियों, पहाड़ों की रक्षा तथा अपनी ज़िंदगी की तबाही के खिलाफ लोग लड़ रहे हैं और आगे भी लड़ेंगे।

ऐंगिल्स का बहुत प्रसिद्ध कथन है कि ''विद्वानों ने दुनिया का विश्लेषण खूब किया है, असली सवाल उसे बदलने का है।'' इस बदलाव की प्रक्रिया में उड़ीसा के जन संघर्ष क्या भूमिका अदा कर पाते हैं यह भविष्य के गर्भ में है। लेकिन यह एकदम सच है कि जल, जंगल, ज़मीन, प्राकृतिक संपदा, खनिज आज जब माल–मुनाफे के निशाने पर हैं तो इनकी लूट के खिलाफ जंग थमने वाली नहीं है, यह तो जारी ही रहेगी। इसका जारी रहना लुटेरों एवं कमेरों के हितों में जारी द्वंद्वात्मक संघर्ष की अनिवार्य परिणति है।

पॉपुलर एजूकेशन एण्ड एक्शन सेंटर (पीस) प्रतिबद्ध और अनुभवी लोगों का ऐसा समूह है जो स्थानीय एवं व्यापक स्तर पर सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को मज़बूत करने की दिशा में प्रयत्नशील है।

इस क्रम में जीवनयापन के लिए जूझ रहे व्यक्तियों एवं समुदायों और अपनी अस्मिता को बचाए रखने तथा जनतांत्रिक मूल्यों के लिए संघर्षरत जन समूहों की जानकारी एवं ज्ञान में बढ़ोत्तरी करना पीस का मुख्य सरोकार रहा है।

विगत कुछ वर्षों से पीस समान सोच वाले समूहों और जन संगठनों के बीच संवाद की प्रक्रिया चला कर व्यापक स्तर पर चलने वाले जन आंदोलनों और गठबंधनों की प्रक्रिया को भी मज़बूत करने हेतु प्रयत्नशील है।

मौजूदा पुस्तिका की तर्ज़ पर ही हमने पहले भी आम जन जीवन को प्रभावित करने वाले मुद्दों पर शिक्षण सामग्री का निर्माण व प्रकाशन किया है। इस क्रम में कुछ महत्वपूर्ण सामग्री निम्न हैः

- ज्ञान की पूँजी पर पूँजी का शिकंजा
- पूँजी के निशाने पर पानी
- बाजारीकरण के दस साल
- The Noose is Tightening - AOA (July Framework)
- Gats (Primer)
- नकेल कसती जा रही है
- Struggle India
- कहीं पर निगाहें, कहीं पर निशाना : वन अधिकार अधिनियम 2006

PEACE

पॉपुलर एजूकेशन एण्ड एक्शन सेंटर (पीस)
एफ–93, कटवारिया सराय, नई दिल्ली–110016